वार्षिक रु. १३०, मूल्य रु. १५

विवेक ज्योति

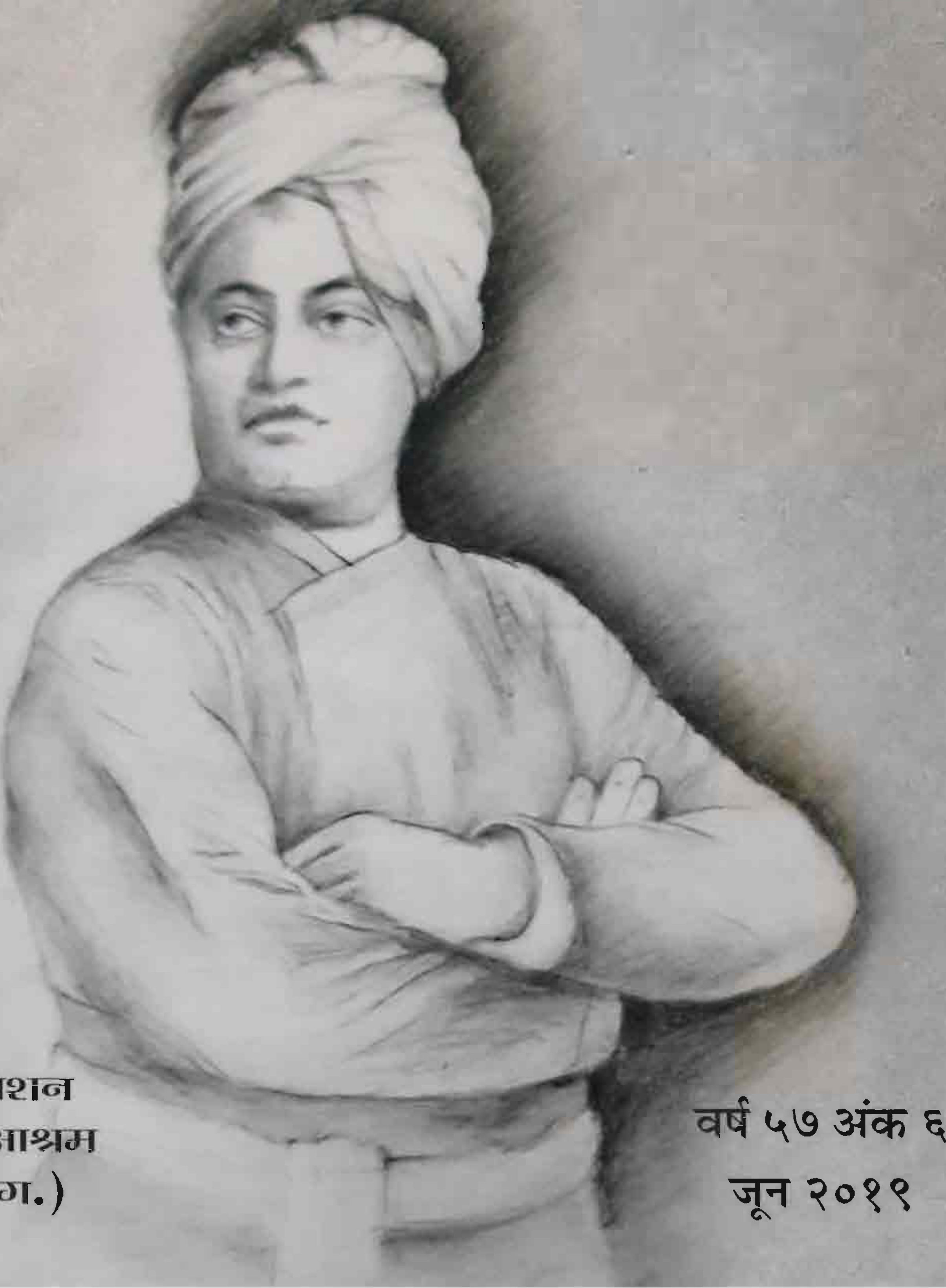

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ५७ अंक ६
जून २०१९

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

जून २०१९

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५७
अंक ६

वार्षिक १३०/– **एक प्रति १५/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–
१० वर्षों के लिए – रु. १३००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ४० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए २०० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १७०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ८५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

१. श्रीरामकृष्णस्तुति: २४५
२. पुरखों की थाती (संस्कृत सुभाषित) २४५
३. सम्पादकीय : पानी में मीन पियासी २४६
४. (युवा प्रांगण) अपने जीवन के अनुभवों से सीखें (स्वामी ओजोमयानन्द) २४८
५. निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (३०) २५१
६. युवैव धर्मशील: स्यात् (स्वामी ब्रह्मेशानन्द) २५३
७. (कविता) जग में तनया बहुत महान (तारादत्त जोशी) २५५
८. यथार्थ शरणागति का स्वरूप (७/१) (पं. रामकिंकर उपाध्याय) २५६
९. साधुओं के पावन प्रसंग (६) (स्वामी चेतनानन्द) २५९
१०. (प्रेरक लघुकथा) मोह-ममता छोड़, त्याग... (डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर) २६१
११. सारगाछी की स्मृतियाँ (८०) (स्वामी सुहितानन्द) २६२
१२. (कविता) जन-जन के मन भाये (सुखदराम पाण्डेय) २६३
१३. उत्कृष्ट जीवन के लिए भगवद्गीता (ए. पी. एन. पंकज) २६४
१४. (भजन) सीताराम गाए जा (स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती) २६७
१५. मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (१८) (स्वामी अखण्डानन्द) २६८
१६. (बच्चों का आँगन) बालक धन्ना जाट २७०
१७. स्वामी विवेकानन्द के प्रिय गुडविन (१६) (प्रव्राजिका व्रजप्राणा) २७१
१८. ईशावास्योपनिषद (१८) (स्वामी आत्मानन्द) २७३

१९. दृग्-दृश्य-विवेक २७६
२०. वैदिक वाङ्मय के ग्रन्थ
(डॉ. के. डी. शर्मा) २७७
२१. आध्यात्मिक जिज्ञासा (४२)
(स्वामी भूतेशानन्द) २८०
२२. मन को अन्तर्मुखी करो
(स्वामी सत्यरूपानन्द) २८२
२३. कर्म करने की कला
(कृष्णचन्द्र टवाणी) २८३
२४. नमामि देवि नर्मदे
(पं. कामता प्रसाद द्विवेदी) २८५
२५. समाचार और सूचनाएँ २८७

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

स्वामी विवेकानन्द का यह तैलचित्र रायपुर निवासी चित्रकार श्री विजय वरठे द्वारा अंकित किया गया है।

जून माह के जयन्ती और त्योहार

६	**महाराणा प्रताप जयन्ती**
१६	**वट पूर्णिमा**
२१	**अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस**

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	**दान-राशि**
श्री देवकीनंदन एम. शर्मा, नागपुर	१,०००/-
श्री लक्ष्मीनारायण दास, सुन्दर नगर, रायपुर	५,०००/-
श्री जी.एल. बत्रा, सेक्टर ५०-बी, चंडीगढ़	२०००/-
श्री संजय चिंचोलकर, बिलासपुर (छ.ग.)	२०००/-

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है । इससे गत एक शताब्दी से भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है । राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं । श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है ।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ५६ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती आ रही है । आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाए पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें । **— व्यवस्थापक**

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	**प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)**
५५९. श्री देवकीनंदन एम. शर्मा, अम्बाझरी लेआउट, नागपुर	गवर्नमेंट पॉलीटेक्नीक कॉलेज फॉर गर्ल्स रोपड़, चंडीगढ़
५६०. श्री अनुराग, (स्मृति में श्रीरामराज,एवं श्रीमती उषाप्रसाद) दिल्ली	गवर्नमेंट आर्ट्स एंड कॉमर्स कॉलेज, सनावद, जि.-खरगोन
५६१. ,, ,,	गवर्नमेंट कॉलेज, कुकुम्सेरी, जि.-लाहौल स्पीति (हि.प्र.)
५६२. ,, ,,	गवर्नमेंट कॉलेज, रावतभाटा, चितौड़गढ़ (राजस्थान)

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ५७ जून २०१९ अंक ६

श्रीरामकृष्णस्तुतिः

गुणातीतचित्तं परज्ञानवित्तं
महायोगसाक्षात्कृत-ब्रह्मतत्त्वम् ।
महिम्ना द्युलोकप्रसर्पन्महत्त्वं
भजे रामकृष्णं महाशुद्धसत्त्वम् ।।

– जिनका चित्त गुणातीत अवस्था में प्रतिष्ठित है, सर्वश्रेष्ठ भगवद्ज्ञान ही जिनकी सम्पत्ति है, जिन्होंने महायोग के द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार किया है, देवलोक तक जिनकी महिमा व्याप्त है, इस प्रकार के परम शुद्ध सत्त्वरूप श्रीरामकृष्ण परमहंस का मैं भजन करता हूँ ।

वरेण्यं शरण्यं कृपाप्रावृषेण्यं
जगन्मातृहस्ताम्बुजस्पर्शधन्यम् ।
महामोहनाशाभिलाषैः प्रपन्नं
भजे रामकृष्णं समाधिप्रसन्नम् ।।

– जो वरेण्य हैं, शरण देनेवाले हैं, कृपा बरसाने वाले हैं और जगन्माता के कर-कमलों के स्पर्श से धन्य हैं, जो महामोह का नाश करने की अभिलाषा से युक्त हैं एवं समाधि में सदा प्रसन्न रहते हैं, उन्हीं श्रीरामकृष्ण परमहंस का मैं भजन करता हूँ ।

पुरखों की थाती

अधमाः धनमिच्छन्ति धनं मानं च मध्यमाः ।
उत्तमाः मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम् ।।६४१।।

– अधम श्रेणी के लोग केवल धन की कामना करते हैं, मध्यम कोटि के लोग धन तथा सम्मान – दोनों ही चाहते हैं, परन्तु उत्तम प्रकृति के लोग केवल मान-सम्मान की ही कामना करते हैं, महान् लोगों की दृष्टि में सम्मान ही धन के तुल्य है।

आदानस्य प्रदानस्य कर्तव्यस्य च कर्मणः ।
क्षिप्रमक्रियमाणस्य कालः पिबति तद्रसम् ।।६४२।।

– दूसरों से जो कुछ लेना है, दूसरों को जो कुछ देना है और जो भी कर्तव्य करना है; उन्हें यदि यथाशीघ्र न किया जाय, तो काल (समय) उनके रस को पी जाता है अर्थात् उनका उतना महत्त्व नहीं रह जाता। (हितोपदेश)

क्रोधो वैवस्वतो राजा तृष्णा वैतरणी नदी ।
विद्या कामदुधा धेनुः सन्तोषो नन्दनं वनम् ।।६४३।।

– मनुष्य के जीवन में क्रोध यमराज के समान है, तृष्णा अर्थात् कामनाएँ वैतरणी नदी (नरक) के तुल्य है, विद्या कामधेनु के सदृश है और सन्तोष मानो (स्वर्गलोक का) नन्दन-वन है। (शुक्रनीति)

सम्पादकीय

पानी में मीन पियासी

एक बार एक सज्जन नाव से गंगाजी के उस पार जा रहे थे। गंगाजी में जोरों से हवा चल रही थी। नाव कभी इधर, तो कभी उधर झुक रही थी। लगता था कि अब उलटी कि तब उलटी। ऊपर से कड़ी धूप थी। उन सज्जन को बड़ी जोरों से प्यास लगी। कुछ देर तो उन्होंने सहन किया। फिर उन्होंने लोगों से पूछा, ''मुझे बहुत जोरों से प्यास लगी है, किसी के पास पानी है क्या?'' उस नाव में किसी भी यात्री के पास पीने का पानी नहीं था, क्योंकि वहाँ के लोग तो गंगाजी का जल ही पी लेते थे। उन्हें गंगा-जल पीने में कोई परेशानी नहीं थी। लेकिन ये सज्जन तो आधुनिक शिक्षाप्राप्त थे। इनके लिए ये गंगा-जल नहीं, केवल जल था। उन्होंने कहा, ''इस जल को तो मैं नहीं पी सकता। मैं तो परिष्कृत जल ही पीता हूँ।'' उनका गला सूख गया, चेहरा मुरझा गया, लेकिन उन्होंने गंगाजी का जल पीकर अपनी तृषा शान्त नहीं की। यात्री उनके आधुनिक मनोभाव पर मन्द-मन्द मुस्कुरा रहे थे। जब इस प्रसंग का मुझे स्मरण हुआ, तो मुझे भक्तिकाल के महान कवि और सन्त कबीरदासजी का वह पद याद आ गया – **पानी में मीन पियासी, मोहि सुन सुन आवे हाँसी।**

मन की गति बड़ी विचित्र होती है। कभी तो वह बड़ी विचित्र कल्पनाएँ करता है और कभी कल्पनाओं को छोड़कर सत्य वस्तु के अनुसन्धान में लग जाता है। वह अपने विचारों के समर्थन में, तत्सम्बन्धी प्रसंगों के अन्वेषण में बुद्धि के शरणागत हो जाता है। तब बुद्धि उस प्रसंग से सम्बन्धित दूसरा प्रसंग उसके समक्ष उपस्थित कर देती है। यहाँ भी वैसे ही हुआ। जब मैं इस प्रसंग के बारे में सोच रहा था, तब हमें विश्वविद्यालय के एक हिन्दी विभागाध्यक्ष की बात याद आई। एक बार विश्वविद्यालय परिसर में ही किसी काम से मुख्यभवन से प्रशासनिक कार्यालय में जा रहा था। तभी रास्ते में उन प्रोफेसर महोदय से भेंट हो गई। उन्होंने कहा-क्यों जा रहे हो, यह पूछने के बाद कहा – ''आजकल छात्रों की स्थिति 'पानी में मीन पियासी' जैसी है।'' मैंने कहा, ''ऐसा क्यों? आपकी यह बात मेरी समझ में नहीं आ रही है।'' उन्होंने कहा, ''यह विश्वविद्यालय सरस्वती का विराट मन्दिर है। ज्ञान का विशाल आगार है। ऐसे स्थान पर आकर भी छात्र अपने जीवन के विकास में अत्यन्त उपयोगी शिक्षा का अर्जन न कर हड़ताल, आन्दोलन आदि जीवन में अनुपयोगी व्यर्थ गतिविधियों में लगे रहते हैं। एक उत्तरदायी अध्यापक के लिए इससे बड़ा दुख और क्या हो सकता है ! छात्रों के जीवन को नष्ट होते देखकर बड़ी पीड़ा होती है। वे लोग अभी इस बात को समझने की मन:स्थिति में नहीं हैं। जब यह बात उन्हें समझ में आएगी, तब उन्हें पश्चात्ताप के अतिरिक्त कुछ करने के लिए नहीं रहेगा।'' समय हो रहा था, हम दोनों अपने-अपने गन्तव्य की ओर चल दिए। मैं उनकी बात सुनकर कुछ देर सोचता रहा। कालान्तर में बातें भूल भी गईं। लेकिन 'पानी में मीन पियासी' के प्रसंग में आज मुझे प्रोफेसर साहब के साथ हुई चर्चा याद आ गई। अब सोचता हूँ। उनकी बात कितनी सत्य थी ! यद्यपि उन्होंने यह बात भौतिक शिक्षा के सीमित क्षेत्र में कही थी, लेकिन उसके अतिरिक्त अध्यात्म के क्षेत्र में इसका बड़ा व्यापक अर्थ है।

सामाजिक रूढ़िवादियों पर सीधा प्रहार करनेवाले क्रान्तिकारी सन्त कबीरदासजी ने जीवों की विवशता, मानव की दैन्य दशा को देखकर इस उलटबासी को कहा था – ''पानी में मीन पियासी, मोहि सुन सुन आवे हाँसी।'' अभिधावृत्ति में इसका अर्थ है कि मुझे सुन सुनकर हँसी आ रही है कि पानी में रहकर भी मछली प्यासी है।

पानी मछली का जीवन है, वह पानी के बिना तड़पकर मर जाती है। लेकिन पानी में रहकर वह क्यों प्यासी रहेगी? ऐसा प्रश्न मेरे मन में उठा। यह बात बड़ी अविश्वसनीय लगती है। तभी एक सज्जन ने बताया कि महाराज मछली जल में रहकर भी जैसे सीधे तैरते हुए दिखाई देती है, वैसे पानी नहीं पीती है। पानी पीने के लिये उसे उलटबाजी करनी पड़ती है। उसे श्रम करना पड़ता है। यदि मछली उलटबाजी कर पानी नहीं पीएगी, तो वह प्यासी रह जाएगी।

कबीरदासजी की उलटबासियों का अर्थ बड़ा गम्भीर और आध्यात्मिक होता है। यहाँ पानी का भावार्थ है ब्रह्म-सरोवर और मीन का तात्पर्य जीवात्मा से है। जब तक जीवात्मा साधना के द्वारा ब्रह्मानुभूति नहीं कर लेता, तब तक वह अज्ञानता के कारण आवागमन के चक्र से मुक्त नहीं होगा और बार-बार इस नश्वर संसार में आकर कष्ट पाता रहेगा।

किसी भी प्रकार का अज्ञान बड़ा दुखदायक होता है।

इसका लौकिक उदाहरण ही लीजिए। जैसे बच्चे को यह पता नहीं है कि आग से हाथ जलता है, तो वह दीपक की लौ को हाथ से पकड़ने जाता है और हाथ जलाकर कई दिनों तक रोता रहता है। प्रारम्भ में ग्रामीणों को यह पता नहीं था कि बिजली के तार को छूने से करेन्ट मारता है, मना करने पर भी किसी-किसी ने दुस्साहस किया और बिजली के तार को स्पर्श कर झुलस गए और कितने मरते-मरते बचे। पानी में तैरना नहीं जानने के कारण कितने लोग डूबकर मर गए। जीवन के दैनिक व्यवहार के वस्तुओं का सही उपयोग नहीं जानने के कारण लोग कष्ट पाते हैं, क्योंकि एक ही वस्तु को वैद्य उसे औषधि के रूप में उपयोग करता है, साधारण व्यक्ति के लिये वह विष है। लोक-व्यवहार की अज्ञानता से व्यक्ति का सामाजिक और पारिवारिक जीवन दुष्कर हो जाता है। शिक्षित नहीं होने के कारण लोग नौकरी के लिए दर-दर की ठोकरें खाते रहते हैं। हमारे भीतर परमात्मा हैं, इसे नहीं जानने के कारण जीव बार-बार जन्म-मरण के चक्र में घूमता हुआ असह्य कष्ट पाता रहता है। कबीरदासजी की अगली पंक्ति इसी का निर्देश करती है **– आतम ज्ञान बिना नर भटके कोई मथुरा कोई काशी**। आत्मज्ञान के बिना जीवात्मा मथुरा-काशी आदि तीर्थों में केवल भटकता रहता है। हमारे ऋषि-मुनियों ने भी कहा है, तीर्थ-दर्शन-पूजन करने के बाद अपने अन्त:स्थ परमात्मा के जप-ध्यान-भजन में निमग्न होओ, अपने भीतर डूबो, तब तुम्हें हृदय-सरोवर में विद्यमान परमात्म-मुक्ता की प्राप्ति होगी। श्रीरामकृष्ण देव कबीरदास का एक भजन गाते थे –

डूब डूब डूब रूपसागरे आमार मन।
तलातल खोजले पाबी पाबी रे प्रेम रत्न धन।।

तीर्थ, मन्दिर आदि उपासना-स्थल साधक को ईश्वरीय भाव में ओत-प्रोत करते हुए उसे अन्तर्मुखी कर हृदयस्थ परमात्मा की अनुभूति करने में सहायक होते हैं। लोग इनके बाह्य स्वरूप तक ही सीमित होकर इधर-उधर भटकते रहते हैं। फिर भी वे भाग्यशाली हैं, जो भगवान के मंदिरों और तीर्थों का दर्शन कर अपने उर में भगवत्-संस्कार डालते हैं। दुर्भाग्यशाली वे लोग हैं, जो विषय-वासनाओं और माया के भुवनमोहिनी ऐश्वर्य से मुग्ध होकर उसे पाने लिए इधर-उधर भटकते रहते हैं, लेकिन अपने भीतर आनन्द के उत्स भगवान को, आत्मज्ञान को जानने का प्रयास नहीं करते। जैसेकि मृग की नाभि में कस्तूरी होती है, लेकिन वह बाहर बेचैन होकर खोजता रहता है – **जैसे मृग नाभी-कस्तूरी बन बन फिरत उदासी**। उपनिषद में कहा गया है –

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयम्भू-
स्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन्।

स्वयम्भु परमात्मा ने इन्द्रियों को बहिर्मुख करके हिंसित कर दिया है। इसीलिए जीव बाह्य विषयों को देखता है, अन्तरात्मा को नहीं। लेकिन यदि जीव त्रितापों से, सभी दुखों से मुक्ति और आनन्द चाहता है, तो उसे अपने अनित्य बाह्यविषयों में लोलुप इन्द्रियों को संयमित कर अन्त:स्थ सर्वज्ञ सर्वव्यापी परमात्मा की अनुभूति करनी होगी। श्लोक के अगले चरण में उपनिषद कहते हैं –

कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्ष-
दावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्।।१।।

जिसने अमरत्व की इच्छा करते हुए अपनी इन्द्रियों को रोक लिया है, ऐसा कोई धीर – विवेकी पुरुष ही प्रत्यगात्मा को देख पाता है। उपनिषद के ऋषि ने कहा – **भूमा वै सुखम् नाल्पे सुखमस्ति** – भूमा – विराट में ही सुख है, अल्प में नहीं। शाश्वत अनन्त कोटि ब्रह्माण्डनायक परमात्मा के सर्वाधिक पास रहते हुए भी जीव दूरस्थ अनित्य वस्तुओं में सुख खोजता रहता है, यही विडम्बना है !

स्वच्छ जलाशय में रहकर कोई प्यासा रहे, प्रखर सूर्य में नेत्रदृष्टि रहते हुए कोई अन्धकार कहकर चिल्लाए, बलवान होकर दुर्बलता-बोध करे, दृष्टि ठीक रहते हुए भी कोई अन्धा बना रहे, तो लगता है, जीव की ऐसी दशा देखकर ही कबीरदासजी ने कहा था **– पानी में मीन पियासी, मोहि सुन सुन आवे हाँसी।** ○○○

बेटा, यह संसार गहरे दलदल जैसा है। मनुष्य जब एक बार इसमें फँस जाता है, तो बाहर निकलना बहुत कठिन हो जाता है। ...प्रभु का नाम जपो। नाम लेते-लेते वे ही एक दिन (बन्धन) काट देंगे। उनके बिना काटे क्या कोई उपाय है बेटा? उनमें खूब विश्वास रखना। जिस तरह बच्चे अपने माता-पिता पर आश्रित रहते हैं, उसी प्रकार ठाकुर को अपना एकमेव आश्रय समझना।

– श्रीमाँ सारदा देवी

अपने जीवन के अनुभवों से सीखें

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा

एक गाँव था। वहाँ ऐसी प्रथा थी कि यदि किसी की आयु अस्सी वर्ष हो जाये, तो इच्छा होने पर उनकी संतान उन्हें जंगल में छोड़ सकते हैं। एक घर में ऐसा ही हुआ। पिता अस्सी वर्ष पूर्ण कर चुके थे। तब बहू ने अपने पति से कहा कि ससुर जी को जंगल में छोड़ दिया जाये। पति भी मान गया। उसने अपने पिता से कहा कि पिताजी गाँव की प्रथा के अनुसार आपको अब जंगल जाना पड़ेगा। अत: कल प्रात: मैं स्वयं आपको किसी सुरक्षित जगह में छोड़ आऊँगा। पिता ने अपनी परिस्थिति को भाँप लिया और निरुपाय हो हामी भर दी। प्रात: पिता-पुत्र जंगल की ओर निकल पड़े। पुत्र आगे-आगे चल रहा था और पिता उसके पीछे-पीछे। पुत्र यह सोचकर कि कहीं पिता वापस न आ सकें, वह टेढ़े-मेढ़े मार्गों से सन्ध्या होने तक चलता ही रहा। फिर एक स्थान पर अपने पिता को छोड़कर उसने विदा ली। पर कुछ दूर आने पर ही अंधकार होने से पुत्र स्वयं मार्ग खोज पाने में असमर्थ हो गया, तब वह भयभीत होकर अपने पिता को पुकारने लगा। उसकी आवाज सुनकर उसके पिता वहाँ आ पहुँचे। तब पुत्र ने पिता को अपनी समस्या बताई। पिता ने पुत्र को आश्वस्त करते हुए कहा कि वह रात्रि वहीं व्यतीत कर ले, वे उसे प्रात: मार्ग दिखा देंगे। सुबह होने पर पिता ने पुत्र को कुछ अंकुरित मूँग दिखाते हुए कहा – बेटा ! कल जब मैं तेरे साथ आ रहा था, तब एक पोटली में मैने कुछ मूँग के दाने रख लिये थे। ये मूँग के दाने मैं मार्ग में फेंकते हुए आया हूँ। आज वे अंकुरित हो चुके हैं। तू इन अंकुरित मूँग को देखते हुए घर वापस पहुँच जायेगा। पुत्र ने धन्यवाद कहते हुए पुन: विदा ली। पर कुछ दूर चलने के पश्चात् उसे अपनी भूल का बोध हुआ। वह पुन: अपने पिता के पास गया और बोला – पिताजी आपके कारण ही आज मैं वापस जा पा रहा हूँ। मैने आपके वृद्ध शरीर का मोल तो किया, पर आपके अनुभव का मोल करना भूल गया। कृपया आप मेरे साथ वापस चलिए। अनुभव वह अनमोल रत्न है, जिसका मोल ज्ञानीजन ही समझ सकते हैं। हमारे जीवन में इसका बहुत महत्त्व है, इसका विश्लेषण करें –

अनुभव एक सकारात्मक पहलू

अनुभव एक सकारात्मक पहलू है। वह सदा हमें अग्रसर करने में सहायक होता है। कभी-कभी हम यह कहते हैं कि मुझे एक बुरा अनुभव हुआ। पर वास्तव में किसी अनुभव के पीछे हमें कभी कष्ट सहना पड़ सकता है या हम विपदा में फँस सकते हैं, पर उस स्थिति में होनेवाला अनुभव हमारे जीवन को सकारात्मक गति प्रदान करता है। उदाहरणत: किसी शिक्षक ने गृह कार्य दिया और विद्यार्थी ने उसे पूरा भी किया, पर वह पुस्तिका गुम हो गयी। तब शिक्षक ने असंतुष्ट होकर उसे दंड दिया और उसे अपमानित किया। यहाँ विद्यार्थी कह सकता है कि उसे एक खराब अनुभव हुआ। पर वास्तव में इस घटना से विद्यार्थी पहले से अधिक सावधान हो जायेगा। उपरोक्त अनुभव से उसे कष्ट होने पर भी वह भविष्य में इस प्रकार की गलतियों से बच जायेगा। स्वामी विवेकानन्द जी अपने एक पत्र में लिखते हैं – ''हम लाख अध्ययन करें, व्याख्यान सुनें और लम्बी-चौड़ी बातें करें, पर यथार्थ शिक्षक और आँख खोलनेवाला तो अनुभव ही है। यह जैसा है, उसी रूप में उत्तम है। सुख और दुख से हम सीखते हैं। हम नहीं जानते कि ऐसा क्यों है, पर हम देखते हैं कि ऐसा है और यही पर्याप्त है।'[१]

अनुभव का मोल

पूस का महीना था। आश्रम में एक उत्सव का आयोजन हो रहा था। अवकाश के समय में स्वयंसेवक मंदिर के पीछे धूप का आनन्द लेते हुए बातें कर रहे थे। बातों-ही-बातों में एक ६० वर्षीय स्वयंसेवक शर्माजी ने २० वर्षीय स्वयंसेवक नवीन से कहा कि तुम मुझसे बड़े हो। नवीन ने कहा मेरी आयु २० वर्ष है और आपकी ६० वर्ष, अत: आप बड़े हैं। तब शर्माजी ने युक्ति देते हुए कहा – देखो युवक ! मैं शान्ति की खोज में जीवन भर भटकता रहा और ८० वर्ष पश्चात् मुझे यह अनुभव हुआ कि शान्ति यहाँ है, जबकि तुम्हें यह अनुभव करने में मात्र २० वर्ष ही लगे। वास्तव में अनुभव का यही मोल है। यहाँ आयु या समय या धन

से अधिक व्यक्ति अपने अनुभव से बड़ा होता है।

अनुभवी पर विश्वास

किसी भी क्षेत्र में केवल पुस्तकीय ज्ञान सम्पूर्ण नहीं होता, बल्कि वह अनुभव के साथ परिपक्व होता है। यदि हमें शल्य चिकित्सा की आवश्यकता हो और यह पता चले कि यह चिकित्सक की पहली शल्य चिकित्सा है, तो हमें अवश्य ही डर हो जायेगा। पर यदि हमें यह पता चले कि चिकित्सक ने सफलतापूर्वक हजारों शल्य चिकित्साएँ की हैं, तो हमें यह आशा अवश्य होगी कि हम पुन: जीवित वापस जा सकेंगे। इस प्रकार अनुभवी व्यक्तियों पर हमारा विश्वास अधिक होता है। चिकित्सक हो या वकील या अन्य कोई भी व्यक्ति हम अपनी समस्या सदैव अनुभवी हाथों में ही देना चाहते हैं, क्योंकि अनुभवों के आधार पर ही उनकी विश्वसनीयता तैयार होती है।

अनुभव और सीख

श्रीरामकृष्णदेव कहा करते थे, ''जब तक जीना, तब तक सीखना।''[२] यथार्थत: सीखने की प्रक्रिया जीवन पर्यन्त चलती रहती है। जिस दिन किसी ने यह सोच लिया कि वह सब कुछ जान चुका है, उसे और कुछ सीखने की आवश्यकता नहीं है, उसी दिन से उसकी प्रगति रुक जाती है।

यहाँ यह भी विचारणीय है कि हमारे सीखने की विधि भी उचित हो। राम ने रावण को जब धराशायी कर दिया, तब राम ने लक्ष्मण को उसके समक्ष ज्ञान की बातें सीखने के लिये भेजा। सर्वप्रथम लक्ष्मण रावण के सिर के समीप बैठे और फिर रावण को अपने भ्राता के आदेश के सन्दर्भ में बताया। तब रावण ने कहा कि किसी से ज्ञान प्राप्त करना हो, तो उसके चरणों के समीप बैठकर विनम्रतापूर्वक शिक्षा ली जाती है। तब लक्ष्मण रावण के चरणों के समीप बैठकर ज्ञान देने का आग्रह करते हैं। इस घटना से हमें दो शिक्षाएँ मिलती हैं। प्रथम, जो व्यक्ति यमराज की गोद में जानेवाला हो, उसे अपने जीवन के सही-गलत निर्णयों का ठीक-ठीक अनुभव होता है और उनसे हमें अनुभव प्राप्त कर धन्य होना चाहिए। द्वितीय, जिनसे हमें अनुभवरूपी ज्ञान प्राप्त करना हो, उनके चरणों में बैठकर नम्रतापूर्वक सीखना चाहिए। इस प्रकार हमें सदा अपने आध्यात्मिक गुरु, शिक्षक, माता-पिता और घर के वरिष्ठों का सम्मान करते हुए उनके अनुभवों से सीखना चाहिए।

अनुभव और उसका हस्तान्तरण

अनुभव के द्वारा ही अनुसन्धान हुआ करते हैं। जिस प्रकार एक वैज्ञानिक अपने आविष्कारों की जानकारी देता है, तब भविष्य के वैज्ञानिक उसके आगे के पड़ावों पर आविष्कार करने लगते हैं। पर यदि ऐसा हो कि कोई वैज्ञानिक आविष्कार करने के पश्चात् उसे किसी को न बताये, तब उस आविष्कार तक पहुँचने और उससे आगे होने वाले आविष्कारों में बहुत समय लग जायेगा। अत: अनुभव सदैव एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी हस्तान्तरित होते रहना चाहिए। भारत की कुछ विद्याएँ मात्र इस कारण लुप्तप्राय: हो गयीं, क्योंकि इस विद्या का दान मात्र वंशपरंपरागत हुआ करता था और जब वह विद्या अकुशल संतानों के हाथों में आयी, तो वे उसे पूर्णत: धारण करने में असमर्थ रहे। इस प्रकार वंशानुगत विद्या का लोप होने लगा। जब ज्ञान को किसी सीमित या अयोग्य लोगों तक रख दिया जाता है, तब हम उन अनभवों को खो बैठते हैं। अत: हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि वह अनुभव सदा योग्य हाथों तक पहुँचना चाहिए। किसी अनुभव को ग्रहण करने हेतु भी एक योग्य आधार की आवश्यकता होती है।

वर्तमान युग की आवश्यकता

एक बार एक दंपती ने सोचा कि माता-पिता को वृद्धाश्रम में दे आते हैं, तो हमारा बहुत खर्चा बच जायेगा। वैसे भी घर का काम तो नौकरानी ही करती है। वह घर में काम के साथ बच्चे को भी देख लेगी। उनका बेटा तब दस वर्ष का था। घर के बहुत पैसे बचने लगे,पर एक दिन रात्रि में दंपती ने अपने बेटे को अश्लील चलचित्र देखते हुए पाया। दंपती ने बेटे को फटकार लगाई और पूछा कि उसने यह कैसे सीखा। तब बेटे ने बताया कि आप दोनों जब दफ्तर चले जाते हैं और दादा-दादी भी घर नहीं है, तब मुझे नौकरानी यह सब दिखाती है। दंपती ने तत्काल नौकरानी को निकाल दिया और उन्हें अपनी भूल पर पछतावा होने लगा, पर बेटे को इसकी इतनी आदत लग चुकी थी कि उसे मनोचिकित्सक से दीर्घ समय तक चिकित्सा करवानी पड़ी। कुछ पैसे बचाने के चक्कर में उन्होंने बड़ा महंगा सौदा मोल लिया था। यदि घर पर दादा-दादी होते, तो ऐसे अश्लील कार्यों में स्वत: ही अंकुश लग जाता। दादा-दादी की निगरानी में रहकर पोते का सदा कल्याण ही होता।

जब हम छोटे होते हैं, तब हमें लगता है कि हमारे बुजुर्ग हमसे बहुत अधिक जानते हैं। पर जैसे-जैसे हम बड़े होते हैं, हम उनके ज्ञान और अनुभव की अवहेलना करने लग जाते हैं। हम उनके अनुभवों का मोल तो समझ नहीं पाते और तो और उनका अपमान भी कर बैठते हैं। उदाहरण हेतु एक घटना लें। दादा ने पोते को तीव्र गति से मोटर साइकल चलाते देखकर पोते से कहा कि बेटा मोटर साइकल सावधानी से चलाया करो। तब पोते ने कहा दादाजी यह आजकल का स्टाइल (ढंग) है। आपके जमाने में तो मोटर साइकल थी नहीं, तो आप क्या जानें ! दादा ने कहा – बेटा, यदि फिल्मों में अभिनेता कुछ विशेष न दिखायें, तो वह लोगों को आकर्षित नहीं कर सकेगा, इसलिए वे ऐसा दिखाते हैं, पर वास्तविक जीवन में ऐसा नहीं होता। मोटर साइकल हमारी यातायात की सुविधा के लिये है ना कि लोगों को दिखाकर मौज-मस्ती के लिये। पर पोते ने दादा की एक न सुनी। कुछ दिन के बाद वह दुर्घटना का शिकार हुआ और पैर ऐसे टूट गए कि वह कभी मोटर साइकल न चला सका। ऐसी बहुत-सी बातें हम सबके जीवन में आती हैं, जहाँ हमें अपनी बुद्धिमत्ता दिखाते हुए वृद्धजनों के अनुभव का लाभ लेना चाहिए। अन्यथा वही अनुभव प्राप्त करते-करते हम स्वयं वृद्ध हो जायेंगे और जीवन में कुछ नहीं कर पायेंगे।

स्वामी विवेकानन्द जी अपने एक पत्र में लिखते हैं – ''जीवन का रहस्य भोग नहीं है, किन्तु अनुभव के द्वारा शिक्षा प्राप्त करना है। किन्तु हाय ! जिस क्षण हमलोगों की वास्तविक शिक्षा प्रारम्भ होती है, उसी क्षण हमलोगों का बुलावा आ जाता है।''[३] युवावस्था वह अवस्था होती है, जब शरीर और मन में प्रचंड शक्ति होती है, पर जीवन का अनुभव नहीं होता। वहीं वृद्धावस्था में जीवन का अनुभव तो बहुत होता है, पर कुछ करने की शक्ति नहीं होती। आज एक स्वस्थ समाज के निर्माण के लिये इसी शक्ति और अनुभव के सामंजस्य की आवश्यकता है।

अनुभव और अनुभूति

दूसरों के अनुभवों को जानकर हम अपनी प्रगति में दो कदम आगे बढ़ सकते हैं, हमें कर्म की प्रेरणा और दिशा मिल सकती है, हम उस मार्ग की बाधाओं से अवगत हो सकते हैं। परन्तु जब तक हम उन अनुभवों की अनुभूति नहीं कर पाते, तब तक वे सारे अनुभव हमें पूर्ण ज्ञान नहीं करा सकते। अत: उन दार्शनिकों, वैज्ञानिकों या महापुरुषों के अनुभवों को पथ निर्देशन में सहायक मानकर स्वयं अनुभूति करने का प्रयास करना चाहिए। तभी हम अपने लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं। ज्ञान का वास्तविक आनन्द स्वयं अनुभूति करने पर ही होता है। श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं, ''अमुक स्थान पर सोने का घड़ा गड़ा हुआ है, यह सुनते ही मनुष्य दौड़ पड़ता है और खोदने लग जाता है। खोदते-खोदते सिर से पसीना निकल जाता है। बहुत देर तक खोदने के बाद कहीं कुदाल में ठनकार आती है। तब कुदाल फेंककर वह देखने लगता है कि घड़ा निकला या नहीं? घड़ा अगर दीख पड़ा, तब तो उसके आनन्द का पारावार नहीं रह जाता, वह नाचने लगता है।''[४]

उपसंहार

जगत में चार प्रकार के लोग होते हैं। प्रथम श्रेणी के, जो दूसरों को देखकर ही उस अनुभव से सीख जाते हैं। द्वितीय श्रेणी के, जो दूसरों का अनुभव सुनकर सीख जाते हैं। तृतीय श्रेणी के, जो स्वयं ठोकर खाकर उस अनुभव से सीखते हैं। चतुर्थ और अधम श्रेणी के वे लोग होते हैं, जो ठोकर खाकर भी उस अनुभव से नहीं सीखते तथा अनुभव का मोल न समझकर आजीवन ठोकर खाते रहते हैं।

हमारा प्रयास हमें अनुभव देता है। उन प्रयासों से हुआ अभ्यास हमें अनुभवी बनाता है और अभ्यास करते-करते हम उस विद्या में महारत हासिल कर लेते हैं। अनुभव कभी खरीदा नहीं जा सकता। पर हाँ, किसी अनुभवी के सान्निध्य में रहकर बहुत कुछ अवश्य सीखा जा सकता है। इन अनुभवी व्यक्तियों या महापुरुषों के अनुभव को अपनी अनुभूति बना लेना ही वास्तविक ज्ञान है। हमें इन अनुभवी व्यक्तियों का सदा सम्मान करना चाहिए। हमें यह याद रखना चाहिए कि जिनकी अँगुली थामकर हम चलना सीखते हैं, हम कभी भी उनसे बड़े नहीं हो सकते। ○○○

सन्दर्भ :

१. विवेकानन्द साहित्य ७/४०९-१० **२. ३.** वि. सा. ७/३७५-७६ **४.** श्रीरामकृष्णवचनामृत २४ दिसम्बर, १८८३ (खण्ड १, पृष्ठ ४०७)

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (३०)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

(निवेदिता के पत्रांश)

११ नवम्बर, मिस मैक्लाउड को

पिछले रविवार को – जरा ध्यान से सोचो! हम लोग स्वामीजी के साथ एक ही मकान में निवास कर रहे थे। शनिवार को – स्वामीजी का ''मैं इस समय कहाँ हूँ!'' आदि घोर शून्यता के भाव के विषय में शायद मैं तुम्हें लिख चुकी हूँ। उस भाव के चले जाने पर भी उनकी हताशा का भाव पूरी तौर से नहीं गया था, चेहरे पर उसके चिह्न भी थे। ...

रविवार को सुबह जलपान के बाद मानो ज्वालामुखी फट पड़ा। सबके सामने ही उन्होंने मेरी ओर उन्मुख होकर पूछा कि मैं और कितने दिन इसी प्रकार झूलती रहूँगी। वे बड़ी कठोर मन:स्थिति में थे। इसके बाद वे मृदु-कोमल कण्ठ से कुछ बोले – उनका यह रूप तो तुम जानती ही हो! मैंने जानना चाहा कि वे इस विषय में कितने गम्भीर हैं? तो देखो, उनकी कठोरता में भी सदाशयता का भाव था, नहीं तो वह निरर्थक ही था। क्योंकि मैं स्वयं ही काफी दिनों से कार्य आरम्भ करने की चिन्ता में थी; और उन्हीं के स्पष्ट निर्देश के अनुसार मैं वहाँ ठहरी हुई थी। मुझे लगता है कि स्वामीजी ने भी ऐसा ही सोचा। तभी ओलिया कमरे से बाहर जाने को उन्मुख हुई और जाते समय, अपने तथा अल्बर्टा के साथ मुझे शिकागो जाने का आमंत्रण देती गयी। स्वामीजी ने आदेश दिया कि मुझे इस आमंत्रण को स्वीकार कर लेना चाहिये – इसके बाद उनका महागौरव प्रकट हो उठा। उन्होंने बताया कि यदि उनके पास मेरे जैसा स्वास्थ्य और ऊर्जा होती, तो वे विश्वविजयी बन जाते। मैं क्षत्रिय हूँ। क्या मैं जानती हूँ कि मैं उन्हीं के वंश की हूँ? मैं ब्राह्मण नहीं थी। तपस्या ही मेरा मार्ग था, आदि आदि। नि:सन्देह यह सब कुछ अद्भुत था। और अन्त में जब वे मुझे आशीर्वाद दे रहे थे, तब उनके अन्दर का गुरुभाव लुप्त हो गया और पितृभाव जाग उठा – वे बोले, ''पृथ्वी के सीने पर टूट पड़ो और मेरे लिये युद्ध करो। पृथ्वी से विदा लेकर मृत्यु की शान्ति में जाने के पूर्व मुझे केवल यही चाहिये।'' ओह! युम!

इसलिये मेरी यात्रा निश्चित हो गयी – ओलिया को मेरी मेजबानी करनी थी – अल्बर्टा के साथ...। रविवार की शाम को मैं अपना सामान बाँध रही थी – उन्होंने बालिकाओं को देने के लिये रेशम की कुछ पगड़ियाँ उठायीं। इसके बाद श्रीमती बुल को देने के लिये उन्होंने दो गेरुए वस्त्र उठाये। वे उन्हें देने के लिये मुझे बुलाकर मेरे कमरे में ले गये। वहाँ श्रीमती बुल बैठकर लिख रही थीं। पगड़ियों को स्वामीजी ने एक किनारे रख दिया।

सबसे पहले उन्होंने द्वार को बन्द किया। इसके बाद उन्होंने गेरुए कपड़े को श्रीमती बुल की कमर में लपेटते हुए उन्हें संन्यासिनी के रूप में सम्बोधित किया। फिर एक हाथ उनके सिर पर और दूसरा मेरे सिर पर रखकर बोले – ''रामकृष्ण परमहंस ने मुझे जो कुछ दिया था, वह सब मैं तुम लोगों को दे रहा हूँ। एक नारी से हमें जो कुछ मिला था, मैं उसे तुम दो नारियों को प्रदान करता हूँ। इसके द्वारा जो भी सम्भव हो, करना। मैं अब स्वयं पर विश्वास नहीं करता। मैं नहीं जानता कि कल मैं क्या कर बैठूँगा, जिससे मेरा सारा कार्य ध्वंस हो जायेगा। एक नारी – जगदम्बा – के पास से जो आया था, उसकी नारियाँ ही भलीभाँति रक्षा कर सकेंगी। मैं नहीं जानता कि वे कौन और क्या हैं; मैंने उन्हें कभी देखा नहीं, परन्तु रामकृष्ण परमहंस ने उन्हें देखा था और स्पर्श किया था, (मेरे वस्त्र के छोर को छूते हुए) इस प्रकार। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि वे सम्भवत: एक विराट् निराकार शक्ति हैं। जो भी हो, मैंने तुम लोगों को भार सौंप दिया है। अब मैं शान्ति पाने जा रहा हूँ। आज सुबह मैं पागल के समान – क्या करूँ, क्या करूँ – यही सोचता हुआ भोजन के पहले सोने जा रहा था। और तभी मेरे मन में ऐसा करने का विचार आया और मैं आनन्द से अभिभूत हो उठा। यह मानो छुटकारे के समान है। मैं इतने समय तक इसे वहन करता रहा; और अब मैंने इसे त्याग दिया है।...''

क्या उन्होंने ये ही बातें कही थीं! मेरा विचार है कि

ऐसा ही हुआ था। मुझे लगता है कि उस समय करीब तीन बजे थे या उसके किंचित् बाद, क्योंकि मुझे याद है कि तब भी दिन का प्रकाश था; और उसके काफी देर बाद मैं फिर उनके साथ पैकिंग करने गयी; और उसके काफी देर बाद जब मैंने उनसे यह कहकर नीचे अग्निकुण्ड के पास जाने को कहा कि बाकी काम मैं अकेली ही कर सकूँगी, तो वे विस्मित जैसे लगे – और यह कहते हुए एक निश्चिन्त बालक के समान चले गये – ओह, मुझे कितना आनन्द महसूस हो रहा है।

अत: युम, इस प्रकार मेरे जीवन की 'चरम घटना' घटित हुई! यह मेरे और सारा के जीवन का महान् सन्धिक्षण था!

अगले दिन वे रिजली में आये। श्रीमती लेगेट ने श्रीमती आर. स्मिथ को उनके साथ मिला दिया, क्योंकि वे जानती थीं कि श्रीमती स्मिथ उनसे कुछ सुनने को व्याकुल हैं। लगता है उन्होंने पूछा कि उनका क्या सन्देश है। उन्होंने उत्तर दिया, "मेरे पास कोई सन्देश नहीं है – पहले मैं समझता था कि मेरे पास है, परन्तु अब मैं जानता हूँ कि मेरे पास संसार के लिये कुछ भी नहीं – केवल मेरे अपने लिये है। मुझे इस स्वप्न को तोड़ना होगा।" मैं जब दुहरा रही हूँ, तो ये बातें इतनी दुर्बल तथा निष्प्राण लग रही हैं, परन्तु जब उनके मुख से निकलीं, तो अद्भुत शक्ति तथा महिमा से परिपूर्ण थीं!

इसके बाद श्रीमती बुल, श्रीमती ब्रिग्स और मैं घण्टों उनकी बातें सुनते रहे। वे शिव के विषय में बोले – जिनके विषय में वे पिछले कई महीनों से निरन्तर बोलते रहे हैं; और बोले शुकदेव की बातें। स्वामीजी के काली-दर्शन के पूर्व के दिनों में श्रीरामकृष्ण उन्हें शुक कहकर पुकारते थे। शुक के लिये यह जीवन, यह ब्रह्माण्ड – सब कुछ खेल के समान था। शिव कहते हैं – "मैं जानता हूँ, शुक जानता है और कदाचित् व्यास भी थोड़ा-बहुत जानते हैं।"

वह वाक्य-मन के अतीत – एक पवित्र और महान् क्षण था। पहले वे एक दुष्ट पुत्र की भाव-भंगिमा के साथ माँ के बारे में बोलने लगे – एक विराट् शैतानी-शक्ति के रूप में – इसके थोड़ी देर बाद उस भाव को भूलकर, कोमल तथा पूजा के भाव से परिपूर्ण हो उठे –

वे माँ, जो सभी प्राणियों के रूप में विराजमान हैं,
उन्हें हम नमस्कार करते हैं।
जिन्हें जगत् महामाया के नाम से पुकारता है,
उन्हें हम नमस्कार करते हैं।

तुम्हीं सारे आशीर्वाद देनेवाली हो,
तुम्हीं सारी शक्ति देनेवाली हो,
तुम्हीं सभी कामनाएँ देनेवाली हो,
तुम्हीं परम करुणामयी हो,
तुम्हें हमारा नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है!

तुम महारात्रि हो, तुम्हीं मोहरात्रि हो,
तुम्हीं मृत्युरात्रि – भयंकरी हो!
तुम्हें हमारा नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है!

इसके बाद उन्होंने हमें सुनाया –

वायु विवेक के लिये बह रही है
समुद्र हमारे ऊपर आशीर्वादों की वर्षा कर रहे हैं –
हमारे स्वर्गस्थ पिता मधुमय हैं,
वन के वृक्ष मधुमय हैं, गो आदि पशु मधुमय हैं,
पृथ्वी की धूलि का हर कण
मधुमय, ज्योतिर्मय है,
ॐ मधु! मधु! मधु!

* * *

[इसी तरह के एक स्तोत्र की आवृत्ति का उल्लेख निवेदिता ने अन्यत्र भी किया है। यथा 'वांडरिंग्स' ग्रन्थ में – (१२ जून, १८९८) "वस्तुत: वह मानो अनुवादों की ही एक संध्या थी और उन्होंने हिन्दू श्राद्ध अनुष्ठान के अंगीभूत अति सुन्दर मंत्रों में से महान् शुभ कामनाओं के कुछ अंश हमारे लिये अनुवाद करके बताए –

वायु हमारे लिए मधुमय होकर बहे,
समुद्र हम पर मधुमय जल की वर्षा करे,
खेतों में मधुमय फसल हो,
वृक्ष और पौधे मधुमय हों,
पशु हमारे लिए मधुमय हों,
हे स्वर्गस्थ पिता! आप हमारे लिए मधुमय हों,
पृथ्वी की धूल मधुमय हो।

और फिर यह कहते हुए उनकी आवाज ध्यान में डूबती चली गयी –

सब मधुमय है! सब मधुमय है! सब मधुमय है!

(क्रमशः)

युवैव धर्मशील: स्यात्

स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

वाजश्रवा के पुत्र उद्दालक नामक द्विज ने एक बार ऐसे यज्ञ का अनुष्ठान किया, जिसमें सर्वस्व का दान किया जाता है। इस यजमान का नचिकेता नामक एक पुत्र था। अभी वह कौमारावस्था में ही था, लेकिन अब उसने दक्षिणा के लिये ले जायी जा रही ऐसी वृद्ध, दूधरहित, दुर्बल और सभी प्रकार से तेजहीन गायों को देखा, तो उसमें श्रद्धा का आवेश हुआ और वह सोचने लगा – "ऐसी वन्ध्या और दूध देने में असमर्थ वृद्ध गायों का दान करनेवाला व्यक्ति आनन्दरहित लोकों को जाता है।" तब वह अपने पिता के पास जाकर बोला, "हे तात, आप मुझे किसको देंगे?" यह प्रश्न उसने तीन बार दुहराया। इस पर क्रुद्ध होकर पिता ने कहा, "मैं तुझे मृत्यु को दूँगा।" पिता द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर नचिकेता एकान्त में अनुताप कर सोचने लगा, "मैं बहुत-से शिष्यों या पुत्रों में तो प्रथम हूँ, बहुत में मध्यम हूँ, लेकिन मैं अधम वृत्ति से कभी नहीं रहता। ऐसे में भी पिता ने मुझे ऐसा अभिशाप क्यों दिया?" इधर उसके पिता यह सोचकर कि "मैंने क्या कह डाला?" शोकातुर हो रहे थे। नचिकेता ने उन्हें ढाँढ़स बंधाते हुए कहा कि आप अपने पूर्व पुरुषों एवं वर्तमान महापुरुषों के सत्यनिष्ठ आचरण की ओर देखिए एवं मुझे आपके सत्य की रक्षा करने की अनुमति दीजिए, क्योंकि कोई अजर-अमर नहीं होता। मनुष्य खेती की तरह पकता और खेती की भाँति उत्पन्न होता है।"

कठोपनिषद् नामक प्रसिद्ध एवं काव्यपूर्ण उपनिषद का प्रारम्भ इस छोटे-से कथानक से होता है। पाठक के मन को आकृष्ट करने, उसमें विषय के प्रति रुचि उत्पन्न करने और जटिल विषय को सहज बोधगम्य बनाने के लिये कथाओं का उपयोग किया जाता है। सामान्यत: इन ग्रंथों में कथा तथा उनके पात्रों की गौण भूमिका बस इतनी ही होती है कि वे पाठक को तत्त्वचिन्तन तक पहुँचा देते हैं। लेकिन कहीं-कहीं, पात्रों के चरित्र सांकेतिक रूप में उन तत्त्वों का प्रतिनिधित्व भी करते हैं, जिनका वर्णन ग्रन्थ में किया गया हो। कठोपनिषद् में भी ऐसी ही बात है। कथा आगे बढ़ती है और नचिकेता यमराज के पास पहुँचकर उनसे जीवन के रहस्य के सम्बन्ध में, परमतत्त्व विषयक प्रश्न करता है। आगे का समग्र ग्रन्थ यमराज का उत्तर ही है। प्रारम्भ में ही यमराज कहते हैं कि यह तत्त्वज्ञान अत्यन्त दुर्लभ है, सुनने को ही नहीं मिलता। सुनने पर भी समझना कठिन है। क्योंकि इसके वक्ता गुरु और श्रोता शिष्य, दोनों को ही अद्भुत अथवा विशेष होना चाहिए।

'आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य
लब्धाऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्ट:।।

वस्तुत: यमराज और नचिकेता दोनों ही इसी प्रकार के श्रेष्ठ गुरु और शिष्य थे। आइए, कथा में वर्णित तथ्यों के आधार पर नचिकेता के उन गुणों का अवलोकन किया जाय, जिनके कारण वे वेदान्त के उत्तम अधिकारी हो सके।

१. कौमार अवस्था

नचिकेता के लिए 'कुमार' शब्द का प्रयोग कर मानो यह बताने का प्रयत्न किया गया है कि वह बाल्यावस्था को समाप्त कर यौवन की देहली पर खड़ा है। अब वह बालवत् मूढ़ नहीं है, उसमें बुद्धि का प्रथम विकास हो चुका है, तथा यौवन की उच्छृंखलता का आगमन नहीं हुआ है। उसका मन तरोताजा, पवित्र, तेजपूर्ण और सजग है। व्यक्ति के जीवन का यह अन्तरिम काल, जब वह बाल्यावस्था को त्याग कर यौवन के पूर्ण विकास की ओर अग्रसर होता है, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। अधिकांश लोगों की जीवन दिशा इसी काल में निर्धारित हो जाती है। नवीनता का इच्छुक एवं जिज्ञासु, विकासोन्मुख मन, इस वय में भली या बुरी, सांसारिक अथवा आध्यात्मिक जिस दिशा में मुड़ता है, वह उसके जीवन की दिशा बन जाती है। यही वह उम्र है, जब व्यक्ति पहली बार स्वतन्त्र चिन्तन करना प्रारम्भ करता है। आध्यात्मिक दृष्टि से तो यह अवस्था महत्त्वपूर्ण है ही। सौभाग्य से यदि इस आयु में किसी युवक को सत्संग प्राप्त हो जाये, तो उसके उत्तम चरित्रवान होने में कोई संशय नहीं रहता। यह उम्र खतरनाक भी है। बलवान इन्द्रियाँ बाह्य प्रलोभनों के कारण मन को अधोगामी भी इसी कोमल-अवस्था में कर डालती हैं। कुसंग न जाने कितने

प्रतिभावान युवकों को इसी उम्र में नष्ट कर डालता है। अत: सभी माता-पिताओं का यह कर्तव्य है कि इस उम्र में अपनी सन्तानों को मार्गदर्शन एवं सत्संग प्रदान करने का प्रयत्न करें तथा इस बात का विशेष ध्यान रखें कि वे कुसंग में न पड़ जायें।

यम और नचिकेता की यह कहानी तो है ही, लेकिन प्रत्यक्षत: भी हम महापुरुषों एवं आचार्यों के जीवन में पूर्वोक्त सत्य के प्रमाणस्वरूप अनेक दृष्टान्त पाते हैं। श्रीरामकृष्ण के पास युवा व वृद्ध दोनों ही प्रकार के जिज्ञासु आते थे, लेकिन उन्होंने अपने अंतरंगों के रूप में ऐसे युवकों को ही चुना, जिनकी उम्र १४ से १८ वर्ष के बीच थी। श्रीरामकृष्ण कहते थे कि इस कम उम्र में मन बिखरा नहीं होता। वह सांसारिक आकर्षणों एवं जिम्मेदारियों आदि के द्वारा विक्षिप्त नहीं हुआ होता है। सांसारिक लोगों का मन बिखरे हुए सरसों के दानों की तरह होता है, जिनको इकट्ठा करना अत्यन्त कठिन होता है। विवाह होने पर सारा मन पति या पत्नी में चला जाता है। सन्तान होने पर वह सन्तान में जाकर और बँट जाता है। फिर ईश्वर में लगाने के लिये बचता ही कितना है? यही कारण है कि सभी आचार्य कम उम्र में ही साधना का आरम्भ करने का सुझाव देते हैं। एक बार कौमार अवस्था के कोमल मन पर यदि शुभ चिन्तन और शुभ आचरण की छाप पड़ जाये, तो वह फिर स्थायी हो जाती है। शुभ आदतों का निर्माण कम उम्र में बहुत आसान होता है। उम्र बढ़ने के साथ-साथ यह कार्य कठिन-से-कठिनतर होता जाता है। स्वामी ब्रह्मानन्दजी का कथन है कि तीस वर्ष की उम्र तक जितनी साधना करनी हो, कर लेनी चाहिए, उसके बाद यह संभव नहीं है। अगर तीस वर्ष की आयु तक साधना समाप्त करने की बात स्वीकार की जाये, तो वह युक्ति तो यही है कि उसका प्रारम्भ कौमारावस्था में ही कर देना चाहिए। खेल-कूद के क्षेत्र में भी प्राय: यह देखा जाता है कि खिलाड़ी ३०-३५ वर्ष तक पहुँचते-पहुँचते अपनी क्षमता खोने लगता है। भले ही मानसिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में ऐसी बात नहीं हो, पर यह तो सत्य ही है कि यही साधना की सर्वश्रेष्ठ अवस्था है।

प्रसंगत: प्रौढ़ एवं वृद्धावस्था के पाठकों के मन में उठ रहे प्रश्न का समाधान कर देना भी उचित होगा। उपर्युक्त कथन से सम्भवत: वे प्रश्न करेंगे कि ऐसी स्थिति में क्या हम ज्ञानाधिकारी नहीं हो सकते? इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त कथन का उद्देश्य साधना को यथाशीघ्र प्रारम्भ करना है। कभी यह सोचने की भूल न करें कि जवानी में संसार का सुख ले लूँगा, वृद्धावस्था में निवृत्त होकर निश्चिन्तता से भगवद् भजन करूँगा। ऐसा कभी नहीं हो पाता। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि अगर किसी कारण से साधना का प्रारम्भ यौवन में न कर पाये हों, तो बाद में इसकी सम्भावना ही नहीं रहती है। कहावत है, 'It is never too late" अर्थात् इस कार्य में कभी देर नहीं है। जब प्रारम्भ कर सकें, तभी अच्छा है। प्रसिद्ध ईसाई सन्त ब्रदर लारेंस की एक वृद्धा को लिखी बात इस सन्दर्भ में अत्यन्त उपयुक्त है। वे लिखते हैं, "मैं अस्सी वर्ष का हूँ और तुम साठ वर्ष की। फिर भी देर नहीं हुई है। अब साधना, भगवद् भजन प्रारम्भ करो। सम्भवत: प्रभु अपनी कृपा-वर्षण के लिये हमारे एक दृढ़ संकल्प की प्रतीक्षा कर रहे हों।" इसके अतिरिक्त पुनर्जन्म में विश्वासी के लिये तो अगले जन्म की अपेक्षा इस जन्म की वृद्धावस्थाओं में साधना का प्रारम्भ समयानुकूल ही है। अगर कुछ भी न हो, तो भी, कम-से-कम एक संस्कार तो पड़ेगा ही, जो अगले जन्म में काम आयेगा।

कुछ लोगों के लिये तो यौवन के बाद ही साधना का प्रारम्भ हो पाता है। एक किशोर एक महात्मा के पास जाया करता था। बालक की अध्यात्म में गहरी रुचि थी। गुरु के सान्निध्य में उसकी इस रुचि में वृद्धि भी हुई और उसने संसार त्यागकर साधना में पूर्ण मनोनिवेश करने की अनुमति माँगी। गुरुजी ने इसकी आज्ञा न देकर उसे कुछ वर्षों बाद ऐसा करने को कहा। वह किशोर यौवन में प्रविष्ट हुआ, पढ़कर एक सफल वकील बना, धन कमाया एवं संसार के भोग में गहरा डूब गया। एक सामान्य संसारी व्यक्ति की तरह नैतिक-अनैतिक सभी प्रकार के आचरण करता रहा। यहाँ तक कि धर्मविमुख और साधु-सन्तों की अवज्ञा भी करने लगा। कई वर्ष बीत गये। प्रौढ़ावस्था में अचानक एक दिन उसके पास उसके गुरु के एक संन्यासी शिष्य आये तथा उसके तिरस्कारों के बावजूद उसे अपने साथ गुरु के सान्निध्य में ले गये। गुरु की कृपा एवं सद्दर्शन से उसकी पूर्व स्मृति जागृत हो गयी और वह अपने दुष्कर्मों के लिए लज्जित हुआ। तब उसने गुरुदेव से पूछा कि उन्होंने उसे किशोर वय में साधना करने से क्यों रोका? यदि वे उसे उस समय संसार त्यागकर साधना करने देते, तो उसकी

यह अधोगति नहीं होती। गुरुदेव ने इसके उत्तर में कहा कि उन्होंने अपनी अन्तर्दृष्टि से उसके प्रबल भोग-संस्कारों को देख लिया था। यदि वे उसे उस समय संन्यास की आज्ञा देते, तो वह उसकी रक्षा करने में असमर्थ होता और पतन के सिवा और कोई परिणाम नहीं होता। लेकिन अब वे सारे कुसंस्कार फलित हो चुके हैं। उनके लिये पश्चात्ताप करने की भी आवश्कयता नहीं है, न ही उन्हें अधोगामी होने के लक्षण मानना चाहिए। कोई प्रायश्चित्त भी आवश्यक नहीं है। बस, अब केवल साधना में लग जाओ, स्वेच्छा से उन कुकर्मों की पुनरावृत्ति न करो।

उपनिषदों में जहाँ नचिकेता जैसे किशोर का अधिकारी के रूप में वर्णन है, वहीं जनक जैसे वयोवृद्ध राजा, आश्वलायन, भरद्वाज, सत्यकामादि अग्निहोत्री गृहस्थों एवं देवराज इन्द्र का भी उल्लेख किया गया है। अधिकारी के लक्षणों में वय का उल्लेख भी नहीं है। अत: साधन-चतुष्टयसम्पन्न किसी भी उम्र का व्यक्ति ज्ञानाधिकारी हो सकता है।

इस सन्दर्भ में एक और विषय की चर्चा की जा सकती है, और वह है, ज्ञान में नारियों का अधिकार। आचार्य शंकर विवेकचूडामणि ग्रन्थ में अनेक दुर्लभ सौभाग्यों की गणना करते हुए नरत्व को उनमें से एक के रूप में गिनाते हैं। कुछ लोगों की यह गलत धारणा है कि नारियाँ वेदान्तोक्त तत्त्वज्ञान की अधिकारी नहीं हो सकतीं। उनका तर्क यह है कि भावप्रवण, कोमल हृदय एवं सहज आसक्ति में लिप्त होनेवाली नारी कठोर, वैराग्य-भित्तिक ज्ञानमार्ग की अधिकारी नहीं हो सकती। इस धारणा का खंडन स्वयं उपनिषद ही करती हैं। जनक की तत्त्व-सभा में गार्गी भी थीं, जिन्होंने तत्त्वज्ञ याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ किया था। उनसे प्रश्न पूछते हुए गार्गी ने कहा था कि मैं तीक्ष्ण बाणों की तरह दो प्रश्न इनसे पूछती हूँ और यदि ये इनके उत्तर देने में समर्थ होंगे, तो इन्हें और कोई हरा नहीं सकेगा। इन्हीं याज्ञवल्क्य ने अपनी भार्या मैत्रेयी को ब्रह्मज्ञान का अधिकारी जानकर ज्ञान का उपदेश दिया था। अत: सामाजिक दृष्टि से कुछ असुविधाओं के होते हुए भी नारियाँ ज्ञान की अधिकारिणी हो सकती हैं। उपनिषदों की ये कथाएँ हमें ज्ञानप्राप्ति हेतु किशोरावस्था से ही सुसंस्कारी बनने एवं सदाचारी होने की प्रेरणा देती हैं। ○○○

जग में तनया बहुत महान

तारादत्त जोशी, उत्तराखण्ड

जग में तनया बहुत महान ।
इससे ही जगती में जीवन-प्रान ।।
यह आदिशक्ति यह जगदम्बा ।
वीणापाणि शारदा अम्बा ।।
यह त्रिगुणात्मिका महाशक्ति ।
महामाया और महाभक्ति ।।
यह सुधाकलश औ श्रीरम्भा,
कृष्णा कावेरी गोदावरी गंगा ।।
यह वेदऋचा और गायत्री ।
मृत संजीवनि बन सावित्री ।।
जिस ओर दृष्टि यह जाती है ।
उस ओर सुता को पाती है ।।
सुता सागर की गहराई में ।
यह अम्बर की ऊँचाई में ।।
बेटी खेलों के मैदानों में ।
यह सामाजिक विज्ञानों में ।।
बेटी नीहारपुर के शिखरों में ।
यह रत्नाकर की लहरों में ।।
बेटी खनिजों की खदानों में ।
यह खेतों में, खलिहानों में ।।
बेटी रक्षक वीर जवानों में ।
यह युद्धक पोत विमानों में ।।
राजेश्वरी राज सिंहासन में ।
यह वेद व्यास के आसन में ।।
देखो छोटी-सी कल्पना,
चन्द्रलोक की सैर चले ।
सदियों से पूजा था, जिसको,
वह चन्दा इसके चरण तले ।।
तनया आगे सभी विधाओं में ।
यह शोभित सभी सभाओं में ।।
बेटी है दिग्दिगन्त में
बेटी है आदि और अन्त में ।।

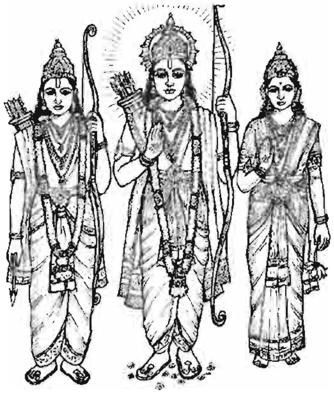

यथार्थ शरणागति का स्वरूप (७/१)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

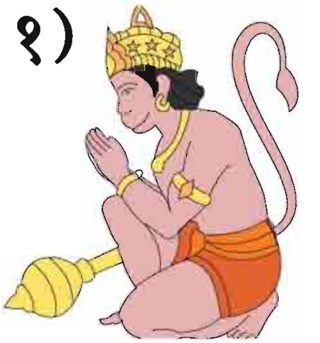

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है । – सं.)

चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं।
करत मनोरथ बहु मन माहीं।।
देखिहउँ जाइ चरन जलजाता।
अरुन मृदुल सेवक सुखदाता।।
जे पद परसि तरी रिषिनारी।
दंडक कानन पावनकारी।।
जे पद जनकसुताँ उर लाए।
कपट कुरंग संग धर धाए।।
हर उर सर सरोज पद जेई।
अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई।।
जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ।।
५/४१/४-५/४२

परम श्रद्धेय स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज और अन्य समुपस्थित सन्तों के चरणों में मैं सादर नमन करता हूँ। सन्तों के ये ही लक्षण हैं –

सबहि मानप्रद आपु अमानी। ७/३७/४

संत दूसरों को मान देता है और वह स्वयं मान की भावना से मुक्त होता है। श्रद्धेय स्वामीजी में तो वह सहज भाव से विद्यमान है ही। वस्तुत: साधना का जो रहस्य है, साधना का जो तत्त्व है, वह केवल बुद्धि का विषय नहीं है। वह तो सचमुच भगवान स्वयं ही किसी व्यक्ति को यंत्र बना करके वे बातें रखवा देते हैं। वह उसके चिंतन या बुद्धिमत्ता का परिणाम नहीं होता। वह तो उसकी अहंशून्यता का परिणाम होता है। आप जो कुछ मेरे माध्यम से सुनते हैं, उसमें सचमुच मेरा कुछ नहीं है। एक यंत्र के रूप में मुझे जो माध्यम बनाकर अपने रहस्यों को व्यक्त करते हैं, यह उनकी महती अनुकम्पा है और इन महान संतों का हमारे ऊपर जो स्नेह है, आशीर्वाद है, वह एक मुख्य कारण है।

शरणागति केवल विभीषण की ही नहीं, रामचरितमानस में कई ऐसे पात्र हैं, जिनकी शरणागति का वर्णन किया गया है। उनमें श्रीभरत जैसे संतत्व की पराकाष्ठा में पहुँचे हुए सिद्ध कोटि के व्यक्ति हैं, वहीं दूसरी ओर सबसे निम्न धरातल पर कपट मृग है। कपट मृग भी अपने आपको शरणागति के लिये ही प्रस्तुत करता है। गोस्वामीजी उसके लिये भी यही शब्द लिखते हैं –

उभय भाँति देखा निज मरना।
तब ताकिसि रघुनायक सरना।। ३/२५/५

तो मारीच जैसा पात्र भी अपने को शरणागति की दिशा में उन्मुख करता है और श्रीभरत, जिन्हें श्रीराम अपने आप से अभिन्न बताते हैं, वे स्वयं भी अपने आप को शरणागत के रूप में ही प्रभु के समक्ष ले जाते हैं। वे तो यह कहते हैं कि मेरे लिए तो प्रभु की शरणागति के अतिरिक्त कोई दूसरा आश्रय ही नहीं है। वह पंक्ति आपने पढ़ी होगी, जिसमें वन में प्रभु की ओर जाते हुए जो कल्पना और संकल्प उनके मन में जागृत होता है, उनमें कितनी दीनता है ! कितने भयभीत हैं ! पर इतना होते हुए भी वे चित्रकूट की ओर बढ़ते जाते हैं और यही कहते हैं –

जौं परिहरहिं मलिन मनु जानी।
जौं सनमानहिं सेवकु मानी।।
मोरें सरन रामहि की पनही।
राम सुस्वामि दोसु सब जनही।। २/२३३/१-२

मैं तो भगवान राम की जो पनही है, जो जूते हैं, उनकी शरण में हूँ। अगर हम ऐसे विभाजन करें, तो जो कपट-मृग

या मारीच की शरणागति है, विभीषण की शरणागति है, विषयी की शरणागति है, वह साधक की शरणागति है और श्रीभरत की शरणागति क्या है? श्रीभरत की शरणागति सिद्ध की शरणागति है। शरणागति की जो भिन्नता है, मनोभूमि में भिन्नता होते हुए भी मानो यह स्वीकार किया गया कि प्रभु की जो शरणागति है, वह एक ऐसा मार्ग है कि जो जिस मार्ग से जाना चाहता है, यहाँ पर वह जाने के लिए स्वतंत्र है। इस मार्ग में कोई नियम नहीं है कि कौन व्यक्ति आ सकता है और कौन नहीं आ सकता है, पर शरणागति की मनोभूमि में जो होना चाहिए, वह हुए बिना व्यक्ति शरणागत नहीं हो सकता है। भगवान श्रीराम की ओर जाते समय विभीषण का जो चिन्तन है, उस चिन्तन में विविध प्रकार के पात्रों का स्मरण विभीषण को हो रहा है, ऐसा आप पायेंगे। प्रभु श्रीराम समुद्र के किनारे विराजमान हैं। विभीषण उनके पास जाते हुए सोच रहे हैं, उनके मन में भावना उठ रही है कि मैं प्रभु के उन श्रीचरणों का दर्शन करूँगा, जिन्हें पाकर अहिल्या पवित्र हो गई, पावन हो गई । वे चरण जिन्होंने दण्डकवन को पवित्र बना दिया, धन्य बना दिया । वे चरण जिन्हें जनकनन्दिनी सीता अपने हृदय में धारण करती हैं। वे चरण, जो कपट मृग के पीछे दौड़ते हैं और जो चरण भगवान शंकर के हृदय में रहते हैं। मैं कितना सौभाग्यशाली हूँ कि आज उन्हीं चरणों का दर्शन करूँगा।

पात्रों के चयन में विचित्रता यह है कि ये जो छः नाम और व्यक्ति उनकी स्मृति में आते हैं, उन छः में सर्वथा भिन्नता है और उस भिन्नता का तात्पर्य यह है कि चाहे कोई व्यक्ति किसी भी वर्ग का क्यों न हो, यह शरणागति सभी के लिए सुलभ है। इसीलिए आगे चलकर विभीषण को लेकर प्रश्न आया। विभीषण जब शरण में पहुँचे, तो उस समय बन्दरों ने उन्हें रोक लिया और बन्दरों ने पूछा कि आप कौन हैं, आपका परिचय? अब इसको आध्यात्मिक भाषा में कहें, तो यों कह सकते हैं कि प्रभु तो विराजमान हैं और चारों ओर बन्दर हैं। तो जब भी कोई व्यक्ति प्रभु के पास पहुँचेगा, तो बन्दरों की अनुमति से ही उसे प्रवेश मिलेगा। अब इसको आध्यात्मिक दृष्टि से गोस्वामीजी जिन अर्थों में प्रस्तुत करते हैं, इस पर आप थोड़ा ध्यान देंगे। गोस्वामीजी कहते हैं कि ये जो बन्दर हैं, ये नाना प्रकार के मोक्ष के साधन हैं। विनय पत्रिका में उनके लिए उन्होंने यही शब्द चुना – **कैवल्य साधन अखिल भालु मर्कट विपुल ज्ञान-सुग्रीवकृत जलधिसेतू। (वि. प. ५८.८)**

प्रभु परम कृपामय हैं। जब प्रभु अवतार लेते हैं, तो अवतार लेने का तो अर्थ यही है कि वे कृपागुण से प्रेरित होकर, करुणा से द्रवित होकर ही अवतार लेते हैं। ऐसी स्थिति में परम कृपामय तो प्रभु हैं, पर वे साधनों से घिरे हुए हैं। एक बड़े महत्त्व का प्रश्न साधकों के जीवन में आता है कि महत्त्व साधना का है कि कृपा का है? कहीं साधना की महिमा शास्त्रों में पढ़ने को मिलती है, कहीं कृपा की महिमा का, कृपा की विलक्षणता का परिचय मिलता है। कभी-कभी ऐसा भ्रम हो जाता है कि ये बातें तो परस्पर विरोधी हैं, पर अगर गहराई से इस पर विचार करके देखें, तो परस्पर विरोधी दिखाई देने पर भी विरोधी नहीं हैं और इसका संकेत प्रारम्भ से ही प्राप्त होता है। जब देवता ब्रह्मा के नेतृत्व में भगवान से करुण प्रार्थना करते हैं और भगवान अवतार लेने की घोषणा करते हैं और यह कहते हैं कि मैं मनुष्य के रूप में अवतार लेकर तुम्हारी समस्याओं का समाधान करूँगा । प्रभु ने जो घोषणा की, वह बड़ी विस्तृत थी। ब्रह्मा और देवताओं ने आकाशवाणी सुनी और आकाशवाणी में यह स्वर सुनाई पड़ा –

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा ।
तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा।।
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा।
लेइउँ दिनकर बंस उदारा।।
कस्यप अदिति महातप कीन्हा।
तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा।।
ते दसरथ कौसल्या रूपा।
कोसलपुरीं प्रगट नर भूपा।।
तिन्ह कें गृह अवतरिहउँ जाई।
रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई।। १/१८६/१-५
हरिहउँ सकल भूमि गरुआई।
निर्भय होहु देव समुदाई।। १/१८६/७

इसका महामंत्र है, पहला वाक्य है – 'जनि डरपहु' और अंतिम वाक्य है – 'निरभय होहु देव समुदाई।' प्रारम्भ में भी कहते हैं कि आप लोग भय से मुक्त हो जाइए, आप डर छोड़ दीजिए, मत डरिए और अन्त में भी कहते हैं कि निर्भय हो जाइए।

जीव के जीवन में भय है और भय के इतने कारण हैं

कि कोई अगर भय के कारणों की कल्पना करने लगे, तो वह इतना दुखी और इतना आतंकित हो जाएगा कि उसके दुख की कोई सीमा नहीं रह जायेगी। ऐसे कुछ लोग होते हैं, जो इस कला में अत्यन्त निपुण होते हैं। यदि वे कुछ भी पढ़ते हैं, समाचार पत्र भी पढ़ेंगे, तो जितनी घटनाएँ पढ़ेंगे, उन घटनाओं को वे साथ में ही जोड़ लेंगे, यदि मेरे साथ ऐसा हो जाय तो। अब कुछ घटनाएँ तो बड़ी भयावह होती हैं। इसीलिए कई विचारक कहते हैं कि समाचार पत्र पढ़ना ही नहीं चाहिए। पर उसका तात्पर्य बस इतना है कि अगर व्यक्ति समाचार पत्रों को पढ़कर, इतिहास पढ़कर भविष्य की ऐसी भयावह कल्पना करे, तो घटनाएँ तो सचमुच संसार में भयानक से भयानक हुई हैं, होती रहती हैं और होंगी। लेकिन वह कितना विलक्षण भय होगा, जो अभी है नहीं और दुखी बना रहा है। कल रात्रि में श्रद्धेय स्वामीजी के सन्निकट बैठकर वार्तालाप चल रहा था तो भूतों की चर्चा चल गई। भूतों की बात में तो भूत है, तो डर लगता है और वहाँ भी वही बात है कि भई, यदि वास्तविक भूत है, तब तो उसे भगाया जा सकता है, पर जो भय का भूत होगा, उसको भगाना तो बड़ा कठिन है। भय तो इतने प्रकार के हैं कि उसकी कोई सीमा नहीं है। एक हमारे स्नेही हैं। वे बड़े उच्च पदाधिकारी हैं। उन्होंने अपना संस्मरण सुनाया। वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय में पढ़ते थे। उन्हें ग्रन्थों को पढ़ने का भी बड़ा शौक था। एक बार उन्होंने चिकित्सा-सम्बन्धी कोई ग्रन्थ पढ़ा। पढ़ने के बाद उन्हें लगा कि उस रोग के जितने लक्षण हैं, वे सब मुझमें हैं। वे घबरा गये। उन्हें लगा कि यह रोग तो हमें हो गया। वे तुरन्त डॉक्टर के पास गये और अपना कष्ट बताने के बदले अपनी विद्वत्ता दिखाते हुए उन्होंने अमुक रोग का नाम लेकर कहा कि मैंने भी उस रोग के सम्बन्ध में पढ़ा है। लगता है कि मुझे यह रोग हो गया है। अब डॉक्टर की हँसी की सीमा नहीं। उन्होंने डाक्टर से पूछा कि आप हँस क्यों रहे हैं? उन्होंने कहा कि तुमने जिस रोग का नाम लिया है, वह केवल स्त्रियों को ही होता है, पुरुषों को नहीं होता। कैसी विचित्र बात थी ! अब इस विद्वान व्यक्ति ने पढ़ते समय यह ध्यान नहीं दिया कि कुछ रोग तो केवल स्त्रियों को ही होते हैं। उनकी उस बात पर बड़ी हँसी आती है। वे भी हँसते हैं। सबको हँसी आती है कि व्यक्ति कैसी-कैसी निरर्थक कल्पनाओं के द्वारा अपने आपको आतंकित और दुखी बना लेते हैं इसकी कोई सीमा नहीं है। इसलिए शोक के कई कारण हैं – **शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च।**

संसार में शोक के हजारों कारण हो सकते हैं, भय के भी सैकड़ों कारण हो सकते हैं, होते ही हैं। लेकिन व्यक्ति का क्या कर्तव्य है? उसका अभिप्राय है कि उसके द्वारा यदि व्यक्ति जीवन में सजग रहे, तो उसका भी एक सदुपयोग है। किन्तु जब इतनी बड़ी संख्या में भय दिखाई दे, तो इसका सर्वोत्कृष्ट उपाय तो यही है कि हम किसी एक व्यक्ति की खोज करें, जो उस भय को दूर कर सके। भय को तो वही दूर कर सकता है, जो स्वयं भयभीत न हो। अगर दो डरने वाले एक-दूसरे का भय दूर करने की चेष्टा करें, तो वे क्या दूर करेंगे? जब मुझसे मिलने कई लोग आते हैं, तो वे लोग ऐसे-ऐसे संस्मरण हमें सुनाते रहते हैं। हमारे जबलपुर के एक स्नेही हैं। जब वे पढ़ते थे, तब की यह घटना है। उनके साथ एक दूसरे विद्यार्थी भी रहते थे। वे एक दिन सो रहे थे और किसी चोर का सपना देख रहे थे। उनके साथी रात में जरा देर से लौटे। अँधेरे में वे मित्र को पहचान नहीं पाये और समझ लिये कि चोर आ गया। वे 'चोर चोर' कहकर इतने जोर से चिल्लाए कि सभी एकत्र हो गये। दोनों एक-दूसरे से डरे हुए हैं। वह बेचारा सोच रहा है कि यह क्या हो रहा है? ये क्यों चिल्ला रहे हैं? संसार में जो डरे हुए व्यक्ति हैं, वे दूसरे का डर कैसे दूर करेंगे? डर तो वही दूर कर सकता है, जो सचमुच डर से मुक्त हो। ऐसे निर्भय तो भगवान ही हैं। सबसे महाभय तो काल का भय है। अगस्त्यजी ने भगवान की स्तुति में कहा –

अग जग जीव नाग नर देवा।
नाथ सकल जगु काल कलेवा।।
अंड कटाह अमित लय कारी।
कालु सदा दुरतिक्रम भारी।। ७/९३/७-८

जैसे प्रात:काल कोई कलेउ करता है, नाश्ता करता है, इसी तरह से काल समस्त ब्रह्माण्ड को खा रहा है। पर वह काल भी किससे डरता है?

तव भयँ डरत सदा सोउ काला। ३/१२/८

वह काल भी आपसे डरता रहता है। तो ऐसी निर्भयता व्यक्ति में नहीं, ईश्वर में होती है। **(क्रमश:)**

साधुओं के पावन प्रसंग (६)

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

स्वामी माधवानन्द

स्वामी माधवानन्द जी नवागत ब्रह्मचारियों को जिस प्रकार सम्मान देते, वह देखने जैसा था। मनुष्य की गरिमा को वे अत्यधिक महत्त्व देते थे। यहाँ तक कि अपने सेवकों को भी बेल (घंटी) बजाकर बुलाना उन्हें अच्छा नहीं लगता था । (उनकी अस्वस्थता के समय) उनके सेवकों की चौबीसों घंटे महाराज की देखभाल करने की जवाबदारी थी। सेवकों को भी थोड़े विश्राम की आवश्यकता तो होती थी। इसलिए रात्रि (ग्यारह बजे से सुबह पाँच बजे तक) में महाराज की देखभाल के लिए प्रशिक्षण केन्द्र के ब्रह्मचारियों को उनके कमरे में रहने की सेवा दी गई थी। पहले दिन रात्रि ११ बजे से २ बजे तक मैं उनकी सेवा में था और उसके बाद एक अन्य ब्रह्मचारी की पारी थी। इस प्रकार एक दुर्लभ सन्त की सेवा करने का अवसर मिलना बड़े सौभाग्य की बात थी। उनके कमरे के एक कोने में टेबल लैम्प जलाकर मैं श्रीरामकृष्णवचनामृत पढ़ता था। साथ ही यह ध्यान भी रखता कि महाराज को यदि शौचालय जाना हो, तो उनको मेरी आवश्यकता पड़ सकती है।

शाम को स्वामी माधवानन्द जी उनके कमरे के दक्षिण बरामदे में आराम-कुर्सी पर बैठते। उनके दोनों पाँव एक बेंत की मचिया पर रहते थे। एक दिन जब वे स्वामी गंगेशानन्द जी महाराज से बात कर रहे थे, तब मैं वहाँ गया। स्वामी गंगेशानन्द जी मुझसे बहुत स्नेह करते थे। इसलिए उन्होंने यह सोचकर कि स्वामी माधवानन्द जी मुझे अच्छी तरह नहीं जानते, मेरा उनसे परिचय कराया। महाराज ने तत्क्षण कहा, "मैं उसे अच्छी तरह जानता हूँ। उसके मुख पर हमेशा स्मित हास्य रहता है।" अपने प्रति उनके इन शब्दों को मैंने आशीर्वाद के रूप में ग्रहण किया।

जहाँ तक मुझे याद है, जिस दिन स्वामी माधवानन्द जी महाराज की महासमाधि हुई (६ अक्तूबर, बुधवार शाम को ६ बजकर ५० मिनट पर), उस दिन मैं स्वामीजी के मन्दिर के पूर्व में गंगा के गोलाकार घाट पर बैठकर जप कर रहा था। बाद में मैंने देखा कि मठ के कर्मचारी श्मशान के कठघरे (रेलिंग) को खोल रहे हैं। कुतूहलवश मैं वहाँ से उठा और किसी साधु से सुना कि स्वामी माधवानन्द जी महाराज ने शरीर त्याग दिया है। अगले दिन हम सबने मिलकर वेदपाठ किया। रामकृष्ण संघ के एक महान साधु चले गए, किन्तु भावी पीढ़ियों के लिए एक आदर्श जीवन छोड़ गए।

स्वामी माधवानन्द जी महाराज के बारे में कुछ लिखना अत्यन्त कठिन कार्य है, यह बात इस लेख के प्रारम्भ में कही गई। वे धर्म की चर्चा करने वालों में से नहीं थे, बल्कि उन्होंने धर्म को अपने जीवन में आचरण कर प्रत्यक्ष प्रकाशित किया था। उनका जीवन ही उनका उपदेश था। स्वामी माधवानन्द जी का पूर्व नाम निर्मल था, जिसका अर्थ होता है कलुषरहित। सचुमच उन्होंने अपने नाम को सार्थक किया था। वे निश्चय ही एक महान विभूति थे।

२

स्वामी माधवानन्द जी के बारे में विभिन्न साधुओं से जो घटनाएँ सुनी थीं, वे निम्नलिखित हैं :

एक युवक प्रतिदिन वचनामृत पढ़ता था । वह साधु बनने के लिए बेलूड़ मठ आया और स्वामी माधवानन्द जी के सचिव स्वामी प्रमथानन्द जी से मिला। उन्होंने स्वामी माधवानन्द जी से युवक की साधु बनने की इच्छा बताते हुए कहा कि वह प्रतिदिन वचनामृत पढ़ता है।

स्वामी माधवानन्द जी ने अपने सचिव से कहा, "उस युवक से कहो कि स्वामीजी की पुस्तकें प्रतिदिन पढ़े। वचनामृत पढ़ने से कोई साधु नहीं बनता। वचनामृत पढ़ने से ईश्वरप्राप्ति होती है। तब फिर कौन साधु बनेगा? स्वामीजी की पुस्तकें पढ़ने से भीतर प्रेरणा आएगी, तब साधु होने की इच्छा जगेगी।"

एक ब्रह्मचारी स्वामी माधवानन्द जी के पास गए और

कहा, "महाराज! मेरा मन बड़ा अशान्त है। कृपया बताइए कि किस प्रकार शान्ति प्राप्त हो?" महाराज बोले, "मुझे बड़ा दुख है कि तुम्हारे मन में शान्ति नहीं है। अच्छा, कोलकाता से अनेक धनवान लोग कीमती गाड़ियों में अपने पत्नी-बच्चों के साथ बेलूड़ मठ आते हैं। वे शान्ति प्राप्त करने के लिए ठाकुर को प्रणाम करते हैं और तुम्हें भी प्रणाम करते हैं। तुम्हारे चरणों की धूलि लेकर उन्हें शान्ति प्राप्त होती है, और तुम कहते हो कि तुम्हारे मन में शान्ति नहीं है! बोलो, मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ?"

इस विषय में एक घटना याद आती है। एक बार स्वामी वासुदेवानन्द जी ने स्वामी तुरीयानन्द जी से पूछा, "शान्ति प्राप्त करने का क्या उपाय है?" महाराज ने कहा, "वैराग्यमेवाभयम् – इसका जप करो, इसी में शान्ति है। कोई भी काम्य वस्तु पाने की चेष्टा मत करो। यदि अच्छी वस्तु अपने आप आए, तो ठीक और यदि चली जाए, तो कहो, 'वैराग्यमेवाभयम्'।" एकमात्र वैराग्य ही मनुष्य को निर्भय कर सकता है।

एक बार स्वामी माधवानन्द जी ने अपने सहयोगी साधु से कहा, "देखो, मेरा महासचिव के पद पर रहना ठीक नहीं है। मैं इसके लिए अनुपयुक्त हूँ।" वे साधु बोले, "ऐसा क्यों कह रहे हैं महाराज?" महाराज ने कहा, "देखो कुछ देर पहले एक ही आश्रम के दो साधुओं को अलग-अलग बुलाकर मैंने बात की। एक ही विषय पर मैंने दो लोगों का साक्ष्य सुना। दोनों की बातें सम्पूर्णतया विपरीत थीं। अब मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि कौन ठीक बोल रहा है और कौन गलत। निश्चय ही उनमें से एक सही नहीं बोल रहा है। मेरी तो ठाकुर के समान शक्ति नहीं है कि झूठ बोलने वाले को पहचान सकूँ । वे दूसरों का मन दर्पण में मुख के समान देख सकते थे। इसलिए मुझे यह पद त्याग देना चाहिए।" वे पूरे मन-प्राण से सत्य का पालन करते थे।

एक दिन स्वामी गम्भीरानन्द जी ने मुझसे कहा, "देखो, रामकृष्ण मठ और मिशन के संचालन कार्य में निर्मल महाराज (स्वामी माधवानन्द जी) का निर्णय सभी लोग चुपचाप स्वीकार कर लेते थे। उनकी बात पर कुछ कहने का किसी को साहस नहीं था। उनका त्याग-वैराग्यमण्डित निर्मल-शुभ्र चरित्र, नि:स्वार्थपरता, पक्षपातहीनता, साधुत्व, पाण्डित्य, संघ के प्रति प्रेम व स्वामिभक्ति, ठाकुर-माँ के प्रति भक्ति एवं प्रखर बुद्धि के कारण सभी साधु उनकी बातें श्रद्धापूर्वक मानते थे। वे आध्यात्मिकता, नैतिकता और नीतिपरायणता पर खड़े रहकर संघ का संचालन करते। साधुओं के प्रति उनका प्रेम, करुणा और क्षमा असीमित थी।"

स्वामी हिरण्मयानन्द जी ने कहा था, "निर्मल महाराज यदि किसी साधु को उनके अनुशासनहीन व्यवहार के कारण दण्ड देते, तो वे साधु बिना कुछ कहे स्वीकार कर लेते, क्योंकि वे जानते थे कि यह दण्ड एक ऐसे महान साधु ने दिया है, जिनके मन में किसी भी प्रकार की घृणा अथवा विद्वेष नहीं है।"

मनु महाराज (स्वामी अचिन्त्यानन्द) बेलूड़ मठ के साधु-निवास में रहते थे । उनका स्वभाव रूखा था। अन्य साधुओं के साथ उनका व्यवहार ठीक नहीं था। एक दिन निर्मल महाराज ने उन्हें बुलाकर कहा, "मनु, तुम्हारे नाम पर शिकायत है।" मनु महाराज ने भी उत्तर दिया, "आपके नाम पर भी शिकायत है।" निर्मल महाराज बोले, "देखो, मेरे नाम पर जो शिकायत है, उसे कालीकृष्ण महाराज (संघाध्यक्ष स्वामी विरजानन्द) देखेंगे और तुम्हारे नाम पर जो शिकायत है, उसे मैं देखूँगा।" निर्मल महाराज रामकृष्ण संघ के महासचिव थे।

बेलूड़ मठ का पुस्तकालय तब पुराने मिशन ऑफिस की ऊपरी मंजिल पर था और वहाँ न्यासी सदस्यों की बैठक भी होती थी। चन्द्र महाराज पुस्तकालयाध्यक्ष थे। उनके पेट में अल्सर हो गया था, इसलिए उनके लिए एक पाव दूध निश्चित किया गया था। बेलूड़ मठ की आर्थिक स्थिति तब अच्छी नहीं थी। अच्छी तरह भोजन भी नहीं मिल पाता था और उस पर मठ के मैनेजर महाराज ने चन्द्र महाराज को दूध देना बन्द कर दिया। चन्द्र महाराज पुस्तकालय में जाकर जोर-जोर से डकारने लगे। पुस्तकालय की पूर्व दिशा में निर्मल महाराज का कमरा और कार्यालय था। उन्होंने डकारने की आवाज सुनी और चन्द्र महाराज को बुलाया। उन्होंने बताया कि उन्हें दूध देना बन्द कर दिया गया है । इसके बाद निर्मल महाराज ने मैनेजर महाराज को बुलवा भेजा कि उनके लिए जो दूध भेजा जाता है, उसे चन्द्र महाराज को दिया जाए। बस, मैनेजर महाराज ने तुरन्त चन्द्र महाराज को पहले के समान दूध देना शुरू किया और निर्मल महाराज को भी दूध देना यथावत् रहा।

स्वामी माधवानन्द जी पंचांग को बहुत मानते थे। कहीं भी जाना होता, तो पंचांग में शुभतिथि देखकर जाते। एक बार मायावती से वे घोड़े पर सवार होकर नीचे उतर रहे थे। अचानक वे घोड़े से रास्ते की झाड़ियों के पास गिर गए।

उनके साथ जो साधु थे, उन्होंने महाराज को तुरन्त सम्हाला। एक साधु बोले, "महाराज, आपने तो शुभ दिन और समय देखकर यात्रा शुरू की, फिर भी यह दुर्घटना हुई।" महाराज बोले, "देखो, मेरी तो खाई में गिरकर मृत्यु हो सकती थी, किन्तु समय-तिथि देखकर निकला था, इसलिए रास्ते के पास गिरा और थोड़ी चोट-खरोंच आई।"

रामकृष्ण संघ में ठाकुर की सन्तानों के बाद स्वामी माधवानन्द जी का नाम आदर्श साधुओं में गिना जाता है। सचमुच उनका जीवन अनुकरणीय था । वचनामृत में ठाकुर ने साधु के जो लक्षण बताए हैं, वे सब उनमें चरितार्थ हुए थे। इतने गुणवान साधु होते हुए भी वे पूर्णतया निरहंकारी थे। १९६१ में महाराज ब्रेन ट्यूमर की शल्य चिकित्सा के लिए अमेरिका गए। स्वामी निखिलानन्द जी ने उनका समस्त व्ययभार वहन किया था। वे अमेरिका में कोर्ट-पैन्ट पहनकर गए थे। हवाई-अड्डे पर लोग यह देखकर विस्मित हो गए कि वहाँ उपस्थित सभी गेरुआधारी संन्यासी एक कोर्ट-पैन्ट पहनेवाले सज्जन को प्रणाम कर रहे है!

१९६४ का वर्ष। तब मैं बेलूड़ मठ के प्रशिक्षण केन्द्र में था। हमारे एक सहपाठी – ब्रह्मचारी माधवन् दर्शनशास्त्र की बहुत चर्चा करते। उन्हें गीता, उपनिषद और विवेकचूडामणि के अनेक श्लोक कण्ठस्थ थे। वे एक दिन स्वामी माधवानन्द जी से दर्शनशास्त्र के अनेक प्रश्न पूछने लगे। महाराज तब रामकृष्ण संघ के संघाध्यक्ष थे। उन्होंने ब्रह्मचारी से साफ कह दिया, "देखो, मैं अब वचनामृत का छात्र हूँ। तुम्हारे वे सब दार्शनिक प्रश्न प्रशिक्षण केन्द्र के आचार्यों से पूछो।" उस समय महाराज बौद्धिक जगत से परे अनुभूति के राज्य में विचरते थे। यह भी हो सकता है कि उन्हें ऐसा लगा हो कि ब्रह्मचारी की 'ज्ञापयितुमिच्छा' अर्थात् जानने की इच्छा नहीं, बल्कि यह प्रदर्शन करने की इच्छा है कि वे बहुत कुछ जानते हैं।

ऐसे प्रचारविमुख संन्यासी को इस मर्त्यलोक से विदा लिए लगभग आधी शताब्दी बीत चुकी है, फिर भी उनका आदर्श जीवन हमें अभी भी प्रेरणा प्रदान करता है और मार्गदर्शन करता है कि साधु का जीवन कैसा होना चाहिए।

(क्रमशः)

मोह-ममता छोड़, त्याग दे धन-मद-पद-अधिकार

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

लाओत्से का एक शिष्य लीहत्जू गधे पर सवार होकर एक गाँव से जा रहा था कि पीछे से घोड़े पर सवार एक मंत्री उसके पास आकर बोला, "सब तो घोड़े पर सवार होते हैं, किन्तु तुम गधे पर सवार हो। तुम्हारे चेहरे पर तेज झलक रहा है। तुम जरूर ज्ञानी होगे। राजा ने मुझे प्रधान सलाहकार के पद के लिए योग्य विद्वान व्यक्ति ढूँढकर लाने को कहा है। मुझे तुम इस पद के लिये काबिल मालूम पड़ते हो, इसलिए मेरे साथ राजमहल चलो।" लीहत्जू ने उत्तर दिया, "जब तक मेरे भीतर वाला मुझे आज्ञा नहीं देता, मैं कुछ भी स्वीकार नहीं करता।" दो टूक उत्तर मिलते ही मंत्री, तुम मूर्ख हो कहकर चला गया।

मंत्री को देखकर बहुत से गाँववासी वहाँ इकट्ठे हो गये थे। पद को ठुकराने पर उन्होंने भी लीहत्जू को नादान समझा। सामने एक कुँआ दिखाई देने पर लीहत्जू ने बालटी से कुँए का पानी निकाला। पानी से उसने पहले अपने कान धो डाले। बाद में गधे के कानों को भी साफ किया। कौतूहलवश लोगों ने लीहत्जू से पूछा, "हमें तो लगा कि आप पीने के लिये पानी निकाल रहे हैं। मगर आपने कान क्यों धोये?" लीहत्जू ने जवाब दिया, "सत्ता को भोगने की बात सुनकर मेरे कानों को कष्ट हुआ। उन्होंने सोचा, पद-लिप्सा मुझे भ्रष्ट मार्ग पर ले जाना चाहती है। इसलिए मैंने उन्हें निर्मल कर डाला।" "यह तो ठीक है ।" ग्रामीणों ने पूछा, "मगर गधे के कान क्यो धो डाले?" इस पर लीहत्जू ने बताया, "जब मुझे राजमहल में ले जाने की बात गधे ने सुनी, तो उसके कान खड़े हो गए और वह मेरी ओर देखने लगा। मैं जान गया कि यह सोच रहा है कि ऊँचा पद मिलने पर इसके पौ बारह हो जाएँगे। उसके कानों से स्फूर्ति की तरंगें उठती देख मैंने इसके भी कान साफ कर डाले।"

धन-सम्पत्ति, ऐश्वर्य-वैभव, भोग-विलास ये सब मनुष्य के आत्मविकास में बाधक होते हैं। जिस प्रकार शुद्ध जल में गंदे पानी के मिल जाने पर वह दूषित हो जाता है और अपनी निर्मलता खो देता है, उसी प्रकार मनुष्य भी मान-सम्मान और पद-प्रतिष्ठा के प्रलोभनों में फँसकर मानवोचित गुणों से वंचित हो जाता है। इसलिए नि:स्पृह व्यक्तियों को लोभ-लालसा के वशीभूत न होकर भ्रष्ट होने से बचना चाहिए। ○○○

सारगाछी की स्मृतियाँ (८०)

स्वामी सुहितानन्द

स्वामी प्रेमेशानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

३.०९.१९६१

प्रश्न – चिन्मय श्याम, चिन्मय धाम – ठाकुर क्या इसी भाव में रहते थे?

महाराज – चिन्मय श्याम, चिन्मय धाम, एक विशेष अवस्था है। एक व्यक्ति कहता है – यदि जानता कि ब्रह्मानन्द क्या चीज है, ऐसी बात नहीं कहता। किन्तु असली बात तो यह है कि बह्मानन्द का बोध करने के लिय इस जागतिक अवस्था में रहने से नहीं होगा। इसके ऊपर उठने पर ही ब्रह्मानन्द का आभास प्राप्त हो सकता है, किन्तु वहाँ से नीचे उतरते ही प्रकृति के क्षेत्र में आना पड़ता है। किन्तु संसार को ब्रह्ममय देखने पर फिर वह भय नहीं रहता है। तब अद्वैत, विशिष्टाद्वैत भाव में सर्वदा जिस किसी अवस्था में उनके लीलारस का आस्वादन किया जा सकता है। इसीलिए ठाकुर ने तोतापुरी और स्वामीजी को माँ काली की सत्ता को स्वीकार कराकर छोड़ा।

रामकृष्ण कहने से तीन चीजें समझ में आती हैं –

धर्म – ज्ञान-कर्म-भक्ति-योग, बुद्ध – ठाकुर-माँ-स्वामीजी, संघ – रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन।

प्रश्न – जटाधारी अपने रामलला को (ठाकुर को) दे गए, यह कैसे सम्भव हुआ?

महाराज – जटाधारी द्वैतभाव से ऊपर नहीं उठ सकते थे। अब वे सभी चीजों में अपने रामलला का दर्शन कर रहे हैं, इसीलिए उन्हें फिर से पूर्व भाव की जरूरत नहीं रही।

प्रश्न – त्याग का क्या अर्थ है?

महाराज – त्याग क्रमश: विकसित होता है – जबरदस्ती करने से कभी अच्छा नहीं होता। किन्तु यहाँ आकर जो साधु का बहुत अच्छा वेश धारण करते हैं, वह अलग बात है। इस समय सामाजिक विशृंखलता के कारण ऐसा होना विवशता है। अभी तो चार आश्रम नहीं हैं, इस समय एक संन्यास आश्रम में ही चारों आश्रम हैं – कामिनी को छोड़कर। फिर भी यह बात एकांगी है। इससे व्यक्ति-विशेष की उन्नति होती है। वह सम्मान पाकर, खाकर-पहनकर उपलब्धि करता है, किन्तु इससे संघ की शक्ति कमजोर होती है। समाज के सामने आदर्श छोटा हो जाता है। समष्टि जीवन की क्षति होती है। दूध में जल मिलाने से जल का मूल्य बढ़ जाता है, किन्तु दूध खराब हो जाता है।

यदि एक संगठित, शृंखलाबद्ध सुन्दर व्यवस्था एक दक्ष व्यक्ति के अधीन रहे, तो ऐसी एक जीवनचर्या रहती है, जिससे सच्चा भाव नहीं रहने पर भी कोई कुमार्ग पर अग्रसर नहीं हो सकता अथवा कम-से-कम संरचना ठीक रहती है। वह परस्पर मार्ग-निर्देश देकर एक-दूसरे की रक्षा करती है। कर्मचारियों के भोजन-वस्त्र के सम्बन्ध में अरुचि या उपेक्षा करना महापाप है। यदृच्छालाभ-सन्तुष्ट तरुतलवासी यदि साधु है, तो परिश्रम करके खाएगा। परिश्रम के अनुसार थोड़ा आहार भी नहीं पाएगा क्या?

११-०९-१९६१

प्रश्न – महापुरुषों का राग-द्वेष कैसा होता है?

महाराज – एक घटना बताता हूँ। एक दिन जगदानन्द स्वामी तरकारी काट रहे थे। उन्होंने देखा कि बाबूराम महाराज गोपाल महाराज को बहुत डाँट-फटकार रहे हैं। उसी समय कृष्णलाल महाराज किसी कार्य से उधर गए थे। उन्होंने तुरन्त उनकी ओर देखकर हँसते-हँसते दो-चार बातें कहीं। फिर गोपाल महाराज की ओर मुड़कर डाँट-फटकार की बातें कहीं। एक ही साथ दो भाव अर्थात् दोनों ही स्वेच्छाकृत – उनका हम लोगों जैसा क्रोध नहीं था।

एक बार मठ में एक नारियल-चोर पकड़ा गया। अविवाहितों में वैसे तो खूब साधुगिरी रहती है, किन्तु उदासी प्रवृत्ति रहती है। अब वह जाय कहाँ ! साधु लोग तो मारने लगते। महापुरुष महाराज देखते ही बोले, "क्या, चोरी की

है बेटा? मेरे पास लाओ तो उसे। बेटा, क्या तुम्हें चोरी करने की जगह नहीं मिली? ऐसा कहकर डंडे से खूब जोर से धमकाकर डंडे से उसके शरीर को खोदते हुए बोले – ''अच्छी धुनाई किया हूँ।'' उसके बाद उसे स्नान-भोजन कराकर जाते समय दो पैसे और एक कपड़ा देकर उन्होंने कहा, ''जाओ, अब फिर चोरी मत करना।''

प्रश्न – अवतारी पुरुषों में क्या राग-द्वेष रहता है?

महाराज – कई लोग कहते हैं, श्रीरामकृष्ण जलेबी खाना पसन्द करते थे। माँ अमुक वस्तु खाना, अमुक फूल इत्यादि पसन्द करती थीं। असली बात यह है कि मनुष्य-देह धारण करने से ही समस्त व्यवहार मनुष्य के समान हो जाता है। किन्तु यह बात ठीक है कि अवतारी लोग इन सबके अधीन नहीं होते हैं। शरीर में क्रिया चल रही है, किन्तु वे कौन हैं, शरीर हैं या क्या हैं, इसे स्पष्ट रूप से जानते हैं।

सामान्यतया, जो जिसका चिन्तन करता है, वह उसकी सत्ता प्राप्त करता है। इसीलिए जो ईष्ट होगा, जो वस्तु काम्य होगी, उसके प्रति राग-द्वेष विमुक्त भाव नहीं होने से भक्त राग-द्वेष के अधीन होकर हीनावस्था को प्राप्त हो जाएँगे। उनका (अवतारों का) राग-द्वेष छोटे बालकों जैसा होता है, वे इन सब बन्धनों से ग्रस्त नहीं होते।

७-१०-१९६१

महाराज – अविवाहित रहना बड़ी समस्या है। किसी दायित्वपूर्ण कार्य में संलग्न नहीं रहने पर लोग प्राय: पागल हो जाते हैं। चाहे ईश्वर-चिन्तन, अन्यथा अन्य किसी कार्य में मतवाला होकर रहना होगा। बाहर से लोगों को देखकर नहीं समझा जा सकता। वैसे कई लोग तो चाल-चलन में, बातचीत में बहुत शालीन होते हैं। किन्तु बुद्धि-विस्मृति (भूलने का रोग) हो जाती है, कहाँ क्या है, याद नहीं रहता। आजकल डिग्री को ही मनुष्य हो जाना समझा जाता है, वह मनुष्य हुआ कि नहीं, यह पता नहीं ! केवल बाहरी विकास हो रहा है, आन्तरिक विकास कुछ भी नहीं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'शिक्षा' नामक पुस्तक पढ़ने से बहुत अच्छी लग रही है, उन्होंने अच्छा चिन्तन किया है।

८-१०-१९६१

महाराज – सामान्य रहो। देखो न, ठाकुर के शिष्यगण कैसे सामान्य, सहज थे। सभी लोग कैसे आध्यात्मिक विभूति थे ! किन्तु बाहर से थोड़ा भी समझ में नहीं आता था। धार्मिक-गठन ही इस प्रकार का हुआ है। निरहंकारी लोगों को देखने से ही अच्छा लगता है, प्राण शीतल हो जाता है।

मनुष्य कई बार मनोवैज्ञानिक कारणों से अस्वस्थ हो जाता है। परीक्षा के पहले छात्रगण अस्वस्थ हो जाते हैं। एक बार निवेदिता स्कूल के सामने एक बालिका कुछ अस्वस्थ हो गई, उसे गाड़ी में बैठाकर अस्पताल ले जाया गया। राधू सब कुछ देख रही थी। वह भी चीत्कार करने लगी कि वह बीमार है। राधू माँ की भतीजी थी, इसीलिए सब लोग घबड़ा गए। डॉक्टर आए। उसे कुछ भी नहीं हुआ था ! तब राधू बोली, मुझे भी उस बालिका की तरह ही गाड़ी में बैठाकर ले चलो।

राधू कितना परेशान करती थी ! केवल परमेश्वरानन्द के डाँटने से ठीक रहती थी। पूरी तरह से विपरीत परिस्थिति नहीं रहने से, क्या श्रीमाँ को इस संसार में रखा जा सकता था? वह तो ठाकुर द्वारा प्रेषित दूत थी। **(क्रमश:)**

जन-जन के मन भाये

सुखदराम पाण्डेय, लखनऊ

तुम आये तो रात सिरानी भिनुसार नियराया ।
छिपे उलूक पतिंगे क्रमशः प्रात का पक्षी गाया।।
हुई दिशायें लाल व्योम में छाया दिव्य उजाला ।
ज्योतिर्मय जड़-जंगम जग से मिटा तमस घन काला ।।
ऋतु बसन्त की हवा फागुनी कामारपुकुर गाँव में ।
बहने लगी तभी प्रभु प्रगटे चन्द्रामणि की छाँव में ।।
आए शिव स्वयम्भू धरती पर माँ को दर्शन देकर ।
खुदीराम का स्वप्न हुआ सच परब्रह्म बन श्रीधर ।।
नाम गदाधर गयाधाम की स्मृति के नव स्वर थे ।
एकाधार में सब देवों को कर धारण ईश्वर थे ।।
भ्रमित सृष्टि के उद्धारक बन नव विहान ले आए ।
कूपों के मेढक जन-गन तक महासिन्धु लहराए ।।
सूखी धरती पर बन बादल बरसे प्यास बुझाने ।
वंचित पीड़ित शोषित जन को अहेतुक अपनाने ।।
द्वापर त्रेता की सुषमा ले रामकृष्ण बन आए ।
सेवा प्रेम त्यागमय जीवन जन-जन के मन भाए ।।

उत्कृष्ट जीवन के लिए भगवद्गीता

ए. पी. एन. पंकज, चंडीगढ़

(अल्हाबादिया प्राणनाथ पंकज जी को पाठकवृन्द ए. पी. एन. पंकज के नाम से भी जानते हैं। संस्कृत, हिन्दी, पंजाबी एवं अंग्रेजी आध्यात्मिक साहित्य में इनका गहन अध्ययन है। इनकी रचनाएँ 'वेदान्त केसरी' एवं अन्य पत्रिकाओं में भी प्रकाशित होती रहती हैं। रामकृष्ण मठ, चेन्नई से प्रकाशित 'गोस्वामी तुलसीदास' पुस्तक के अलावा इन्होंने 'चण्डीपाठ' पर भी एक पुस्तक लिखी है, जिसका प्रकाशन मोतीलाल बनारसीदास द्वारा हुआ है। – सं.)

भगवद्गीता को ब्रह्मविद्या और योगशास्त्र के विशेषणों से अभिहित किया गया है। यह हमें श्रीकृष्ण और अर्जुन के संवाद के रूप में प्राप्त हुई है।[१]

ब्रह्मविद्या का उद्देश्य चरम-सत्य को जानने में हमारी सहायता करना है। तर्कसंगत विवेचना सत्य के स्वरूप को जानने में सहायक होती है। अपरोक्षानुभूति में श्रीशंकराचार्य ने कहा है –

नोत्पद्यते विना ज्ञानं विचारेणान्यसाधनैः
यथा पदार्थभानं हि प्रकाशेन विना क्वचित्।।[२]

''जैसे प्रकाश के अभाव में सांसारिक पदार्थों को देख पाना संभव नहीं है, उसी प्रकार परिप्रश्न और विवेचना के अतिरिक्त अन्य किसी साधन से (सत् स्वरूप) ज्ञान की उपलब्धि नहीं हो सकती।''

भगवद्गीता में भी भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है – तत् पदार्थ, अर्थात् परमतत्त्व को जानना हो, तो विनम्रता, परिप्रश्न और सेवाभाव से तत्त्व-ज्ञानीजनों की शरण ग्रहण करो। वे तुम्हें ज्ञान का उपदेश करेंगे –

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।[३]

सत्य के प्रति जिज्ञासा मनुष्य में स्वाभाविक रूप से रहती है, पर इस इच्छा का उत्कट अनुभव तब होता है, जब सांसारिक कष्ट, शोक, दुख आदि हम पर प्रहार करते हैं। श्रीसदानन्द योगीन्द्र ने इस स्थिति के लिए उस व्यक्ति की उपमा दी है, जो 'जन्म-मरण रूपी संसार के दुखों की अग्नि में झुलस रहा हो, ऐसे कि जैसे उसके सिर पर आग जल रही हो और वह उससे त्राण पाने के लिये किसी जलाशय की खोज कर रहा हो '– **जन्ममरणादि संसारानल सन्तप्तो दीप्तशिराजल-राशिमिव...।**[४]

अर्जुन कुरुक्षेत्र में ऐसी ही मानसिकता से संत्रस्त है। वह अस्तित्व के सबसे बड़े संकट में घिरा हुआ है। निराशा, अनिश्चय, किंकर्तव्यविमूढ़ता से ग्रस्त है। अर्जुन 'शोक' में है। अपने सम्बन्धियों और प्रियजनों को युद्धक्षेत्र में आमने-सामने देखकर उसके हाथ-पाँव फूल गए हैं और अपनी इस मन:स्थिति का वर्णन वह श्रीकृष्ण से करता है। इस प्रकार गीता का प्रथम अध्याय 'विषाद' का अध्याय है। चूँकि यहाँ वह विषाद से जुड़ा हुआ है, इसलिए इस अध्याय का नाम 'विषादयोग' है।

जैसा कि पहले कहा गया है, गीता योगशास्त्र है। योग का अर्थ है जोड़ना (योजयति), संतुलित करना (तोलयति) तथा मानसिक बल की वृद्धि करना (वर्धयति)। योग मन को जोड़ता है (युज्यते अनेन), उसमें जोड़ता है (युज्यते तस्मिन्)। इस प्रकार भगवद्गीता जीवन का संतुलित रूप से संचालन करने, क्षमताओं और संभावनाओं की अभिवृद्धि करने तथा सांसारिक सम्बन्धों को ईश्वर अथवा अपने वास्तविक स्वरूप के साथ जोड़ते हुए, कर्तव्य कर्मों का पालन करते हुए, आत्मसाक्षात्कार अथवा भगवत्प्राप्ति करने के पथ का निर्देशन करती है।

एक ओर विषाद के सूत्र से जुड़ा अर्जुन का मन है और दूसरी ओर हैं श्रीकृष्ण। इस विषाद से उबरने के लिए अर्जुन श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण करता है, वह कहता है कि मैं आपका शरणागत शिष्य हूँ **– शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।**[५] इस प्रकार आरम्भ होता है संवाद। विषादयुक्त मनुष्य का परमात्मा से संवाद। ''यह योग आत्मा की किसी ऐसी-वैसी शक्ति का नाम नहीं है। यह हृदय, चित्त और इच्छा की तमाम शक्तियों का परमात्मा के साथ जुड़ने का नाम है। यह मनुष्य के उस प्रयास का नाम है, जिसके द्वारा वह अपने अन्तरतम के गहनतम तत्त्व से जुड़ता है ... इस प्रकार योग का तात्पर्यार्थ ऐसा अनुशासन है, जिसके द्वारा हम स्वयं को इस योग्य बना पाते हैं कि हम संसार के आघात-प्रतिघातों को अपने केन्द्रीय आत्मिक स्वरूप से छुए बिना सहन कर सकें।[६]

इस प्रकार विषादग्रस्त अर्जुन-संवाद के लिये श्रीकृष्ण की ओर – डॉ. राधाकृष्णन् के शब्दों में, 'अन्तरतम के गहनतम तत्त्व की ओर' – अभिमुख होता है। वह अपनी

शारीरिक और मानसिक स्थिति को खुलकर प्रस्तुत करता है। श्रीकृष्ण स्वीकार करते हैं कि अर्जुन उनका भक्त और सखा है – **भक्तोऽसि मे सखा चेति**।[७] यहाँ जीव और ब्रह्म के बीच उस सम्बन्ध का संकेत है, जिसका उल्लेख उपनिषद के दो पक्षियों के रूपक द्वारा हुआ है। पक्षी, जो सखा हैं, साथ रहते हैं (परस्पर जुड़े हुए हैं) और एक ही वृक्ष का आश्रय लिए हुए हैं ... जीव असहाय हुआ, मोहित हुआ, शोक करता है ..... और जब वह परमात्मा की महिमा को जान लेता है, तो शोकरहित हो जाता है –

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति।।
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः।।[८]

पर श्रीकृष्ण अपने शिष्य, भक्त और सखा अर्जुन को केवल मीठी मीठी, मनोऽनुकूल बातों से नहीं रिझाते, उसकी हाँ में हाँ नहीं मिलाते। उसके तथाकथित 'प्रज्ञावाद' को स्वीकार नहीं करते। वे उसकी भर्त्सना भी करते हैं, चेतावनी भी देते हैं – संकट की इस घड़ी में निराशा कैसी? **''कश्मलं ... विषमे समुपस्थितम्''**[९] **''नैतत्त्वय्युपपद्यते''**[१०] – यह तुम्हारे योग्य नहीं है। सच्चा मित्र भी वही है, जो अपने मित्र को गलत रास्ते से निवृत्त करके सही रास्ते की ओर जोड़ता है – **''पापान्निवारयति योजयते हिताय''**[११]। **''कुपथ निवारि सुपंथ चलावा''**[१२] इसी प्रकार जब शोक और शंका मनुष्य को व्याकुल करते हैं, तब उसकी अन्तरात्मा ही उसका सच्चा मित्र बनकर उसका मार्गदर्शन करती है। श्रीकृष्ण ही हम सबकी अन्तरात्मा के रूप में हृदय में विराजमान हैं।

और यहाँ रणभूमि में वे ही अर्जुन के समक्ष उपस्थित हैं। संवाद प्रारम्भ होता है। एक सुन्दर रूपक से डॉ. राधाकृष्णन् उस दृश्य का वर्णन करते हैं –

''ज्यों-ज्यों संवाद आगे बढ़ता है, सारी नाटकीयता समाप्त हो जाती है। युद्धभूमि की प्रतिध्वनियाँ सुनाई देना बंद हो जाती हैं और हमें ईश्वर और मनुष्य के बीच समालाप के स्वर ही सुनाई देते हैं। युद्ध का रथ ध्यान के एकान्त कक्ष में रूपान्तरित हो जाता है और रणभूमि का एक कोना, जहाँ संसार का शोर सुनाई नहीं पड़ता, परमेश्वर के चिन्तन की उचित स्थली बन जाता है।''[१३]

यहाँ हमारे लिए संदेश यह है कि संसार की उलझनों, संघर्षों, चिन्ताओं और सुख-दुख का शोर तो बना रहता है। इन्हीं के बीच, हमें एक निभृत कोना अपने भीतर तलाशना है, वहीं अन्तर्यामी परमात्मा से वार्तालाप करना है। उसी की शरण ग्रहण करनी है। वह, जो सब के हृदय देश में विराजमान है – **ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति... तमेव शरणं गच्छ**।[१४]

इसी के लगभग तुरन्त बाद श्रीकृष्ण कहते हैं – **मामेकं शरणं व्रज**[१५]। मेरी शरण ग्रहण करो, आगे बढ़ो, मुझ तक पहुँचो। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं – ''जब तुम उस अपरिवर्तनीय अस्तित्व को बाहर देखते हो, तब उसे ईश्वर और जब तुम इसे भीतर देखते हो, तो इसे अपनी आत्मा या स्वरूप कहते हो। दोनों एक ही हैं।''[१६]

हृदयदेश स्थित परमात्मा के साथ, सद्गुरु के साथ अथवा अपने इष्टदेव, श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीरामकृष्ण या किसी अन्य रूप के साथ ऐहिक और आमुष्मिक जीवन की उत्कृष्टता के लिये संवाद आवश्यक है। अवसाद में डूबे जीव के त्राण का यही उपाय है।

अर्जुन शोक में डूबा हुआ, 'शोकसंविग्न' है। उसने धनुष-बाण त्याग दिए हैं – 'विसृज्य सशरं चापं'। कुरुक्षेत्र में होते हुए भी कर्तव्यविमुख हो गया है और निष्कर्मण्य भाव से, मौन साध कर रथ में जा बैठा है, पलायन कर गया है।[१७]

विषाद से उबरने का मार्ग संवाद से ही मिलता है। इस संवाद से अर्जुन को 'प्रसाद' की उपलब्धि होती है, अस्थिर मन को शान्ति प्राप्त होती है। उसकी शंकाओं का समाधान होता है। परिणामस्वरूप वह फिर से कर्तव्य पथ पर आरूढ़ होता है **– स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव**।[१८] गीता कहती है – **प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते**।[१९]

जब भगवत्कृपा से 'प्रसाद' – प्रशान्ति, serenity - की प्राप्ति होती है, तो बुद्धि स्थिर हो जाती है और शोक की आत्यन्तिक निवृत्ति होती है।

जब कभी हम स्वयं मनुष्य होने के विषय में विचार करते हैं, तो ज्ञात होता है कि मनुष्य होने के नाते हममें विभिन्न अन्तर्विरोधी लक्षण विद्यमान हैं, जैसे मानवीय दुर्बलताएँ और शक्तियाँ, चंचलता और गंभीरता, पौरुष और क्लैब्य, दोष और गुण आदि सब हमारे भीतर ही हैं। कुरुक्षेत्र में श्रीकृष्ण के समक्ष उपस्थित यह जो अर्जुन है, वह हमारा ही प्रतीक, हमारा ही प्रतिनिधि है। मनुष्य होने के नाते हम में दैवी और आसुरी दोनों प्रकार की संपत्ति विद्यमान है।[२०] इन दोनों के बीच द्वन्द्व बना रहता है। इन दोनों प्रकार के

लक्षणों की व्याख्या करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं –

अभयं सत्त्व संशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्।।
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत।।[२१]

"भय का अभाव, अन्त:करण की पवित्रता, तत्त्वज्ञान के लिये योग में दृढ़ स्थिति, दान, इन्द्रियदमन, यज्ञरूपी सत्कर्म, स्वाध्याय, स्वधर्मपालन के लिये कष्ट-सहन, स्वभाव की सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, चंचलता का अभाव, परनिन्दा में अरुचि, भूत-प्राणियों पर दया, विषयों के प्रति अनासक्ति, कोमलता, लज्जाशीलता, चपलता का अभाव, तेज, क्षमा, धैर्य, बाह्य शुद्धि, शत्रुता का अभाव, निरभिमानिता, मनुष्यों में ये दैवी संपत्ति के लक्षण हैं।"

आसुरी संपत्ति के लक्षण भगवान इस प्रकार बताते हैं –

दम्भो दर्पोऽतिमानश्च क्रोधो पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्।[२२]

दम्भ, घमण्ड, अभिमान की अधिकता, क्रोध, कठोरता और अज्ञान, उसी मनुष्य में ये लक्षण आसुरी सम्पदा के रूप में विद्यमान हैं।

इस प्रकार न्यूनाधिक मात्रा में ये लक्षण हम सबमें विद्यमान हैं। कुछ ऐसे हैं, जिनके भीतर होने के बारे में या तो हम अवगत नहीं है, या फिर सजग नहीं हैं। कुछ हममें नहीं रहने के बावजूद, हमें उनका मिथ्याभिमान दूसरों द्वारा की गई प्रशंसा के चलते हो जाता है। कुछ ऐसी सद्वृत्तियाँ हममें छिपी रहती हैं, जिनसे हम अनभिज्ञ होते हैं। इसी प्रकार हममें कुछ ऐसे दोष होते हैं, जिन्हें हम जानते तो हैं, पर उनसे मुक्त होने की इच्छा शक्ति हममें नहीं होती या फिर चाहते हुए भी हम उनसे ऊपर नहीं उठ पाते। कुछ को दूर करने का प्रयास तो हम करते हैं, पर सफलता के लिये हममें समुचित अध्यवसाय की कमी होती है। कुछ दोषों को तो हम अपने भीतर देख ही नहीं पाते, पर उन्हें दूसरे देख लेते हैं।

जीवन का पुरुषार्थ इस बात में है कि हम अपनी अन्तर्निहित शक्तियों को, अपने गुणों को पहचान कर उनका सदुपयोग करें। जो दुर्वृत्तियाँ हममें हैं, उनको जान कर उनसे मुक्त होने का उपाय करें। गीता कहती है – **दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।**[२३]

दैवी सम्पत्ति को अपनाने से मुक्ति – स्वाधीनता प्राप्त होती है और आसुरी सम्पत्ति से बंधन – परतंत्रता की प्राप्ति होती है। आत्मोन्नति के प्रति सजग होने से, दैवी-सम्पत्ति को आचरण में लाकर, सही मार्ग पर चलने से हम निरन्तर उत्कृष्टता की ओर अग्रसर होते हैं। योगवासिष्ठ में कहा गया है –

शुभाशुभाभ्यां मार्गाभ्यां वहन्ती वासना सरित्।
पौरुषेण प्रयत्नेन योजनीया शुभे पथि।।

"शुभ और अशुभ मार्गों में बहती हुई इच्छाओं की नदी को पुरुषार्थ और प्रयत्न से शुभ मार्ग की ओर जोड़ना चाहिए।" भाव यह कि शुभ मार्ग में अग्रसर वृत्तियों के साथ अशुभ वृत्तियों को, अशुभ वासनाओं को शुभ में बदलकर निरन्तर शुभ की ओर बढ़ने में प्रयत्नशील रहना चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द ने एकाधिक बार मनुष्य में निहित दिव्यता पर बल दिया है। साथ ही, वे यह भी कहते हैं –

"एक सरोवर के अधस्तल में क्या है, यह हम देख नहीं पाते, क्योंकि इसकी सतह लहरों में ढँकी रहती है। अधस्तल की झलक पाना हमारे लिये तभी संभव हो सकता है, जब लहरें रुक जाएँ और जल शान्त हो जाए। यदि जल कीचड़युक्त है और हर समय हलचल में रहता है, तो हम तल को देख नहीं सकते। यदि वह निर्मल हो और तरंगित न हो, तो हम उस तल को देख सकेंगे। सरोवर का अधस्तल ही हमारा यथार्थ स्वरूप है।"[२४]

मानव-जीवन का पुरुषार्थ यही है कि हम सतह के कीचड़ को साफ करें, उस पर नाचती लहरों को शान्त करें। इसलिए पंतजलि ने और गीता ने भी अभ्यास पर बल दिया है।[२५] ऐसा करने से ही हम अपने में निहित संभावनाओं की पहचान कर सकते हैं, उन्हें आचरण में ला सकते हैं और उत्कृष्ट जीवन की दिशा में बढ़ सकते हैं। ऐसा करना हमारा अपना उत्तरदायित्व है। गीता कहती है –

उद्धरेदात्मनात्मानम् नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।।[२६]

"अपना उद्धार अपने द्वारा ही करें। स्वयं को अवसाद – अधोगति में न जाने दें। मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र और स्वयं ही अपना शत्रु है।"

मन, मस्तिष्क और हाथों के बीच, भक्ति, ज्ञान और कर्म में, समन्वय, उनकी पारस्परिक मैत्री और सहयोग से

उत्कृष्टता की यात्रा सम्पन्न होती है। मिथ्या आत्मसन्तोष और निराशा - कश्मल - दोनों से अवसाद उत्पन्न होता है।

गीता में दो मिलते-जुलते शब्दों का प्रयोग मिलता है। उनके अर्थ भिन्न होते हुए भी उनमें एक सम्बन्ध है। ये शब्द हैं, 'संख्य' (१.४७,२४) और 'सांख्य' (५.४,५.५, २.३९,१८.१३ आदि)। संख्य का अर्थ है, युद्ध अथवा युद्ध क्षेत्र। सांख्य का अर्थ गीता में बुद्धि और ज्ञान है। कुरुक्षेत्र की तरह जीवन भी युद्ध क्षेत्र है जहाँ निरन्तर संघर्षों का सामना करना होता है। कुरुक्षेत्र की तरह ही जीवन धर्मक्षेत्र भी है। धर्म अर्थात् अपना कर्तव्य कर्म जिसका सम्पादन अनासक्त, निष्काम भाव से करना आवश्यक है। यही कर्म ईश्वर की अर्चना है, सिद्धि का, सफलता का, उत्कृष्टता का सोपान है –

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।[२७]

इस 'संख्य' को कर्म को – 'सांख्य' के साथ – ज्ञान के साथ 'युक्त' करके, कर्मयोग और ज्ञानयोग का समन्वय करके जीवन यात्रा करना ही गीता का मार्ग है। इन दोनों के साथ समर्पण की, शरणागति की, भक्ति की भावना – भक्तियोग भी जुड़ा है, ताकि अहंकार न हो - न कर्म का, न ज्ञान का। जो भी कर्म हम करें, श्रीकृष्ण कहते हैं, 'तत्कुरुष्व मदर्पणम्'। श्रीकृष्ण स्वयं ज्ञानस्वरूप हैं - मूर्तिमान ज्ञान। वे ही हमें समर्पण और निष्काम कर्म की प्रेरणा देते हैं।

गीता ज्ञान के उसी अमृत का वितरण करती है। गीता कहती है, ज्ञान के बहाने पलायन न करो, भागो मत, अनुभव के साथ, बुद्धियोग का आश्रय लेकर आसुरी शक्तियों का सामना करो। गीता हमें ऐसे चुनाव का, विकल्पों का अवसर भी देती है, जिनसे हम अपनी सीमाओं के क्षेत्र को आगे ले जाते हुए असीम की ओर, स्वाधीनता की ओर – अग्रसर होते रहें। यदि हम इन विकल्पों का उपयोग करें, सतह के जल को निर्मल करें, उसकी लहरों की हलचल को शान्त करें, तो हमें उत्कृष्टता की उपलब्धि हो सकती है। 'संख्य' और 'सांख्य ' के बीच यदा कदा एकान्त में, श्रीरामकृष्ण के शब्दों में 'निर्जन' में जाकर, ईश्वर को पुकारें, उसका स्मरण करें, तो हम ऐसा करने में सफल हो सकते हैं। श्रीकृष्ण कहते हैं –

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।[२८]

"उन मेरे ध्यान में लगे हुए और प्रेमपूर्वक मुझे भजनेवाले भक्तों को मैं बुद्धियोग प्रदान करता हूँ, जिससे वे मुझे प्राप्त होते हैं।"

आइए, हम योगेश्वर श्रीकृष्ण से प्रार्थना करें कि वे हमें बुद्धियोग प्रदान करें, हमारे जीवन के 'विषाद' को, अपने साथ 'संवाद' द्वारा अनुग्रहरूपी 'प्रसाद' प्रदान करें। ○○○

सन्दर्भ सूची –

१. गीता के प्रत्येक अध्याय का उपसंहार 'श्रीमद्भगवद्गीता-सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे...' के साथ होता है; **२.** अपरोक्षानुभूति ११; **३.** भगवद्गीता ४.३४; **४.** वेदान्तसार ३०; **५.** गीता २.७; **६.** सर्वपल्ली राधाकृष्णन् : इंडियन फिलॉसोफी, प्रथम खंड पृष्ठ ५३२ (जॉर्ज एलन एंड अन्विन लि., लंदन १९५८; हिन्दी अनुवाद लेखक द्वारा); **७.** गीता ४.३; **८.** मुण्कोपनिषद ३.१.१-२; **९.** गीता २.७; **१०.** वही, २.३; **११.** भर्तृहरि नीतिशतक ७३ (नागपुर, रामकृष्ण मठ) ;**१२.** रामचरितमानस ४.७.३; **१३.** इंडियन फिलॉसोफी, प्रथम खंड पृ.५२१; **१४.** गीता १८.६१-६२; **१५.** वही १८.६६; **१६.** कम्पलीट वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द ३.२४ (अनुवाद लेखक द्वारा); **१७.** गीता १.४७; **१८.** वही १८.७३; **१९.** वही २.६५; **२०.** बृहदारण्यकोपनिषद के एक प्रसंग की व्याख्या करते हुए आचार्य शंकर ने कहा है कि देवता और दानव कहीं बाहर नहीं, हमारे भीतर ही हैं (देखिए इस उपनिषद के ५वें अध्याय के द्वितीय ब्राह्मण पर आचार्य का भाष्य।); **२१.** गीता १६.१-३; **२२.** वही १६.४; **२३.** वही १६.५; **२४.** कंप्लीट वर्क्स १.२.०२; **२५.** योगसूत्र, अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोध: (१.१२), गीता - अभ्यासाद्रमते यत्र ... तत्सुखम् सात्त्विकं .. (.३६,३७); **२६.** गीता ६.५; **२७.** वही १८.४६; **२८.** वही १०.१०

सीताराम गाये जा

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती

सीताराम सीताराम सीताराम गाये जा ।
रामजी के चरणों में मन को लगाये जा ।। सीताराम..
छोड़ सभी रिश्ते बस मान यही नाता,
पिता रघुनाथजी श्री जानकीजी माता ।
इसी भाव गंगा में डुबकी लगाये जा ।। सीताराम..
दुनिया भर में काहे भटकता,
द्वारे द्वारे सीस पटकता ।
रामजी के द्वार पर ही अलख जगाये जा ।।सीताराम..
क्या आशा करना जन-जन की,
दया दृष्टि जब रघुनन्दन की ।
प्रभु की कृपा से नित मौज उड़ाये जा ।। सीताराम..
नहिं 'राजेश' रंक कोई अपने,
ये सब खुली आँख के सपने ।
सद्गुरु वचन सदा चित्त लाये जा ।।सीताराम..

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (१८)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लंघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

खम्बालिया के भुतहा मकान में

स्वस्थ होकर घर लौट आने के बाद खम्बालिया गाँव के एक भाटिया सेठ अपनी स्त्री की चिकित्सा के लिये उसे लेकर जामनगर आये । उन्होंने मुझसे कहा, "आप एक बार खम्बालिया चलिये, वहाँ बहुत-से लखपति लोगों ने जन्म लिया है और वहाँ उन लोगों की कीर्ति के अनेक चिह्न विद्यमान हैं ।"

मैंने सेठजी के साथ वहाँ की यात्रा की । परन्तु उनके घर में स्थान का अभाव होने के कारण एक विशाल खाली मकान में मेरे रहने की व्यवस्था हुई । वहाँ मैंने अकेले ही रात बितायी । मैं दूसरी मंजिल के जिस कमरे में रहता था, उसका दरवाजा फर्श पर एक चौकोर छिद्र के रूप में था; ठीक उसके साथ ही नीचे उतरने की सीढ़ी जुड़ी हुई थी । उसके दो किवाड़ थे, जिनमें चक्के लगे थे । उसे खींचकर बन्द कर देने से सीढ़ी का मुख बन्द होकर कमरे का फर्श समतल हो जाता । अंग्रेजी में इसे ट्रैपडोर और वहाँ की देशी भाषा में 'दादरा' कहते हैं । गुजरात तथा काठियावाड़ के प्राय: सभी बड़े-बड़े मकानों में इसी तरह के दरवाजे हैं ।

एक दिन मुख्य द्वार बन्द करने के बाद मैं फर्श पर लेटा हुआ था । दरवाजा खुला हुआ था । मकान में किसी के आने का कोई अन्य मार्ग नहीं था । जरा-सी तन्द्रा आ जाने से मैंने केवल एक बार आँखें बन्द की थीं, तभी देखा कि एक अत्यन्त कुरूप व्यक्ति, अपने साथ दो तीन बकरियाँ लिए मेरे चारों ओर घूम रहा है और मुझे धक्का मारने की चेष्टा कर रहा है, परन्तु मुझे स्पर्श नहीं कर पा रहा है । उसके पास ही एक जलती हुई लकड़ी पड़ी है । आँखें खोलकर देखा, तो वह कुरूप व्यक्ति थोड़ी दूरी पर बैठा था, परन्तु क्षीण प्रकाश के कारण उसका मुख स्पष्ट रूप से नहीं दिखायी दे रहा था । ठीक से देखने पर बकरियाँ और जलती हुई लकड़ी आदि – कुछ भी देखने को नहीं मिला । दो-तीन बार – "कौन है? कौन है?" कहकर पुकारने पर भी जब कोई उत्तर नहीं मिला, तो मैं उसे पकड़ने गया । परन्तु इसके साथ ही वह न जाने कहाँ लुप्त हो गया ।

मैंने तत्काल ही नीचे आकर उसे चारों ओर खोजा, परन्तु वह कहीं भी दिखायी नहीं दिया, जबकि मुख्य द्वार बन्द था । यदि आदमी होता, तो वह अन्दर कैसे आता? इसके बाद मैं फिर ऊपर जाकर अपने बिस्तर पर बैठ गया और उच्च स्वर में 'रामरक्षा-स्तव' का पाठ करके बोला, "भाई, तुम लोग यदि भूत हो, तो मैं तुम्हारा अतिथि हूँ । जितने दिन यहाँ हूँ, अतिथि समझकर कुछ मत करना ।"

अगले दिन सुबह सबको रात की घटना बताने पर वे बोले, "कहते हैं कि यह मकान भुतहा है और जब आपने देखा है, तो फिर हम अविश्वास भी नहीं कर सकते । आप चलिये, हम दूसरे मकान में जगह देंगे ।" मेरे मना करने पर एक वृद्ध ने मेरे निकट सोने की इच्छा जतायी । परन्तु मैं उसके लिये भी राजी नहीं हुआ । इसके बाद भी मैंने पाँच दिन उसी मकान में बिताया । अन्य किसी दिन कुछ भी देखने में नहीं आया ।

जामनगर से भावनगर, नडियाद, मुम्बई

भाटिया लोगों का कीर्ति-कलाप देखने के बाद मैं फिर जामनगर लौट आया । कुछ दिनों बाद मैं भटजी के साथ बड़ौदा राज्य के कुण्डला ग्राम में गया । वहाँ से भटजी देश लौट गये और मैं भावनगर चला गया ।

मार्ग में मैंने जैनतीर्थ पालिताना के शत्रुंजय पहाड़ पर जैन लोगों के अतुल्य कीर्ति-चिह्नों का दर्शन किया । भावनगर में मुझे सूचना मिली कि स्वामीजी अमेरिका गये हैं । वहाँ लगभग एक पखवारा निवास करने के बाद मैंने मुम्बई की यात्रा की । मार्ग में नडियाद में जूनागढ़-नवाब के दीवान हरिदास विहारीदास भाई के घर कुछ दिन कृष्णानन्द भिक्षु के साथ निवास तथा वेदों पर चर्चा हुई । हरिदास विहारीदास स्वामीजी के परम भक्त तथा सम्पन्न जमींदार थे ।

नडियाद से मैं मुम्बई गया । वहाँ लगभग एक माह रहने के बाद ठाकुर के भक्त राखाल हालदार के साथ पूना

गया। वहाँ से मुम्बई लौटने के बाद राखाल महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) का एक पत्र मिला और उनसे मिलने हेतु मैंने आबूरोड की यात्रा की।

आबूरोड में गुरुभाइयों का सम्मेलन

आबूरोड स्टेशन पर स्वामी ब्रह्मानन्द तथा स्वामी तुरीयानन्द से मिलन हुआ। यहीं पर ब्रह्मानन्द जी ने मुझसे कहा, "जानते हो, स्वामीजी अमेरिका क्यों गये हैं?" मैं बोला, "नहीं।" स्वामी ब्रह्मानन्द ने कहा, "स्वामीजी जब पश्चिमी घाट की पहाड़ियों तथा महाराष्ट्र अंचल में भ्रमण कर रहे थे, तब वहाँ के आम लोगों का दु:ख-दारिद्र्य तथा बड़े लोगों के अत्याचार को देखकर वे सर्वदा रोया करते थे। उन्होंने हम लोगों को बताया था, 'देखो भाई, इस देश में इतनी दु:ख-दरिद्रता है कि अभी यहाँ धर्म-प्रचार का समय नहीं हुआ है। यदि कभी इस देश की दु:ख-दरिद्रता दूर कर सका, तभी धर्म की बातें सुनाऊँगा। इसीलिए कुबेर के देश जा रहा हूँ, देखूँ यदि कुछ उपाय हो सके।' "

आबूरोड स्टेशन पर तीन-चार दिन रहने के बाद हम तीनों ने जयपुर की यात्रा की। वहाँ पर हम लोगों ने सरदार हरिसिंह लाड़खानी के घर लगभग एक माह रहकर वहाँ के सभी द्रष्टव्य स्थानों का अवलोकन किया।

स्वामी ब्रह्मानन्द ने मुझे सलाह दी, "तुम्हें उदर-रोग तथा सर्दी-खाँसी है, इन दोनों रोगों से मुक्त होने के लिए राजपुताना अत्यन्त उपयुक्त स्थान है। खेतड़ी के राजा स्वामीजी के शिष्य तथा परम भक्त हैं। मैं कहता हूँ, तुम वहाँ जाओ, वे तुम्हें बड़े यत्नपूर्वक रखेंगे।"

राजपुताना – खेतड़ी और मलसीसर

यह सुनकर मैंने खेतड़ी की यात्रा की। खेतड़ी जयपुर से ४० कोस दूरी पर स्थित है। खेतड़ी में पहली बार डेढ़ महीने राजा के अतिथि के रूप में निवास करते समय मैंने राजा के पुस्तकालय से थियोडोर पार्कर की समग्र गन्थावली पढ़ी और भारतीय इतिहास तथा संस्कृत के काव्य-साहित्य का अध्ययन किया।

हिन्दी भाषा ठीक से न जानने के कारण उस भाषा में शुद्ध बातचीत न कर पाने पर राजा के दरबारियों ने कटाक्ष किया।

बाद में खेतड़ी राजा के सम्बन्धी सरदार भूरसिंह के निमंत्रण पर मैंने मलसीसर जाकर उनके घर चातुर्मास बिताया और दो माह माधुकरी करते हुए एक जैन साधु के समाधि-मन्दिर में निवास किया। चातुर्मास के दौरान मैं वेदान्त, संस्कृत तथा हिन्दी भाषा का अध्ययन किया करता और जैन साधु के मन्दिर में पण्डित सीताराम के पास जाकर नियमित रूप से 'शंकर-दिग्विजय' की व्याख्या सुनता।

सीताराम ने बताया कि ठाकुर के भक्त विख्यात नैयायिक पण्डित नारायण शास्त्री ने बहुत पहले ही सर्वप्रथम यहाँ श्रीरामकृष्ण देव को अवतार के रूप में प्रचारित किया था। वे राजपुताना के शेखावाटी अंचल के व्यक्ति थे।

राजपुताना में आठ महीने रहकर विभिन्न ग्रामों में भ्रमण करके मैंने धनी सरदारों तथा निर्धन प्रजा की दशा देखी। मैं गरीब प्रजा के दु:ख दूर करने के उपाय सोचता रहा और उसी को मानव-जीवन का प्रमुख कर्तव्य मानकर उसी कर्तव्य को पूरा करने का संकल्प किया।

अब तक मुझे हिन्दी भाषा का अच्छा ज्ञान हो चुका था। मैंने गरीब प्रजा के अन्न-वस्त्र का अभाव, प्रकाश तथा वायु से रहित घरों में निवास, उनके अर्थ-शोषण के द्वारा धनिकों के भोग-विलास का वर्णन करते हुए – "प्रजा के प्रति राजा का क्या कर्तव्य है?" – इस विषय पर खेतड़ी-नरेश को हिन्दी में एक सुदीर्घ पत्र लिखा।

राजा के आमंत्रण पर मैं पुन: खेतड़ी लौट आया। गरीब प्रजा की दुखद अवस्था और राजा एवं सरदारों की विलासिता तथा उदासीनता के भाव का समुचित वर्णन करते हुए मैंने खेतड़ी से अमेरिका में स्वामीजी को पत्र लिखकर पूछा कि गरीब प्रजा के दु:खों को दूर करने के लिये मैंने जैसा संकल्प किया है, वह उचित है या नहीं।

राजसभा में मैं प्रतिदिन वेदान्त पर चर्चा किया करता था। एक दिन वेदान्त-चर्चा के दौरान राजा के एक मुसाहिब ने राजा की ओर इंगित करके कहा, "आप तो सब जानते ही हैं।" अर्थात् मैं वेदान्त के विषय में जो कुछ बोल रहा हूँ, राजा को वह सब पहले से ही ज्ञात है।

ऐसी निर्लज्ज खुशामदी मुझसे सहन नहीं हुई। मैं हिन्दी में बोल उठा, "क्या कहते हो – ये सब कुछ जानते हैं! राजा क्या जान सकते हैं? एक संन्यासी ८० वर्ष, सारा जीवन, दिन-रात चर्चा करके भी जिस वेदान्त को समझ नहीं पाता, उसे तुम्हारे राजा ने दिन-रात खेलकूद, रसरंग में उन्मत्त रह कर भी जान लिया है! हमारे देश के बड़े आदमियों की इसी तरह खुशामद कर-करके तुम लोगों ने उन्हें जहन्नुम में पहुँचा दिया है। यह वेदान्त क्या कोई

शेष भाग पृष्ठ २८१ पर

बालक धन्ना जाट

भगवान सरल भक्तों से बहुत प्रेम करते हैं। सरलता का अर्थ है कि मन और मुख एक होना। मन में कुछ और रहे और बोलना-करना कुछ और रहे, तो ऐसे लोग भगवान को प्रिय नहीं होते। छोटे बच्चे सरल होते हैं, इसलिए उन्हें सभी लोग प्रेम करते हैं। यही मन की सरलता यदि हमेशा बनी रहे, तो जीवन सदा आनन्दमय हो जाता है। भगवान स्वयं भी ऐसे सरल लोगों की पग-पग पर रक्षा करते हैं।

बालक धन्ना भी मन से बहुत सरल थे। उनका जन्म पन्द्रहवीं सदी के प्रारम्भ में हुआ था। उनके पिता सीधे-सादे किसान थे। उनके घर हमेशा साधु-संत लोग आते थे। साधु-संतों की वहाँ सेवा भी अच्छी होती थी। बालक धन्ना भी साधु-संतों को देखते कि वे किस प्रकार भगवान का नाम लेकर जीवन जीते हैं। धन्ना तब पाँच वर्ष के थे।

एक बार उनके घर एक ब्राह्मण आए। धन्ना देख रहे थे कि ब्राह्मण किस प्रकार अपने प्रभु की पूजा करते हैं। ब्राह्मण ने कुएँ से पानी निकाला और स्नान किया। स्नान करने के बाद उन्हें पूजा करनी थी। उन्होंने अपनी झोली से शालग्राम को निकाला। शालग्राम पवित्र पत्थर या छोटी शिला के रूप में होते हैं। वे गण्डकी नदी से प्राप्त होते हैं। शालग्राम को भगवान विष्णु का प्रतीक मानकर पूजा की जाती है।

बालक धन्ना को इच्छा हुई कि जिस प्रकार ब्राह्मण शालग्राम की पूजा कर रहे थे, उस प्रकार वे स्वयं भी करें। उन्होंने ब्राह्मण से कहा, ''पण्डितजी, कृपया मुझे भी ऐसी एक मूर्ति दीजिए न, मैं भी पूजा करूँगा।'' अब कोई भी व्यक्ति अपनी पूजा करने वाली मूर्ति किसी अपरिचति व्यक्ति को तो देगा नहीं। किन्तु धन्ना बहुत हठ करने लगे और रोने लगे। ब्राह्मण को भी समझ नहीं आ रहा था कि वे क्या करें। उन्होंने पास में पड़ा हुआ एक काला पत्थर उठाया और बालक धन्ना को देते हुए कहा, ''बेटा! ये ही तुम्हारे भगवान हैं, तुम इनकी पूजा करना।'' धन्ना तो खुशी से फूले नहीं समा रहे थे। वे शालग्राम से खेलने लगे। कभी उसे सिर पर रखते, कभी अपने हृदय से लगाते।

धन्ना को तो मालूम नहीं था कि भगवान की किस प्रकार और किन साधनों से पूजा करनी चाहिए। किन्तु भगवान तो भाव के भूखे हैं। वे यह नहीं देखते कि हम उन्हें क्या अर्पित करते हैं, वे तो हमारी भावना को देखते हैं। धन्ना स्नान करने के उपरान्त शालग्राम की पूजा करते। फूल, तुलसी, दीपक इत्यादि भगवान के सामने रखते। उनका यह सच्चा विश्वास था कि भगवान को जो दिया जाए, वे सचमुच प्रत्यक्ष ग्रहण करते हैं। एक बार उन्होंने भगवान को भोग में बाजरे की रोटियाँ दीं और स्वयं आँख बन्द कर बैठ गए। बीच-बीच में वे देखते कि भगवान सचमुच खा रहे हैं या नहीं। जब उन्होंने देखा कि भगवान तो रोटियाँ नहीं खा रहे हैं, तो उन्होंने भगवान से बहुत प्रार्थना की। उन्हें लगा कि जब भगवान नहीं खाते हैं, तो उन्हें भी रोटियाँ नहीं खानी चाहिए। इस तरह दिन-पर-दिन बीत गए, धन्ना ने कुछ नहीं खाया। वे रोज भगवान के सामने रोटियों का भोग लगाते, किन्तु रोटियाँ वैसी की वैसी ही पड़ी रहतीं। धन्ना भी कुछ खाते नहीं थे। उनका शरीर दुबला होता जा रहा था। अब भगवान से भी रहा न गया। एक दिन जब धन्ना बाजरे की रोटियों का भोग लगा रहे थे, तब भगवान प्रकट हुए और उनकी रोटियाँ खाने लगे। जब आधी रोटियाँ खा चुके, तब धन्ना ने भगवान का हाथ पकड़ लिया और कहा, ''भगवान, इतने दिनों तक आप आए नहीं, मुझे भूखा रखा और अब सब रोटियाँ खाने चले! क्या आप मुझे रोटियाँ नहीं देंगे?'' भगवान ने उन्हें भी कुछ रोटियाँ अपने प्रसाद के रूप में दीं । इस प्रकार प्रतिदिन भगवान कुछ रोटियाँ खाकर धन्ना को दे देते। आगे चलकर धन्ना बहुत बड़े सन्त हुए। ○○○

स्वामी विवेकानन्द के प्रिय गुडविन (१६)

प्रव्राजिका व्रजप्राणा

स्वामीजी एवं अन्य साथियों के अलमोड़ा निवास के समय गुडविन की मृत्यु की उन पर क्या प्रतिक्रिया हुई, इसका मर्मस्पर्शी वर्णन निवेदिता ने श्रीमती एरिक हेमण्ड को लिखे ५ जून के पत्र में किया है –

''कल दोपहर को गुडविन की मृत्यु का समाचार देने वाले टेलिग्राम ने हम सभी को शोक से आच्छन्न कर दिया। श्रीमती ओली बुल तथा मिस मैक्लाउड उन्हें मेरी अपेक्षा अधिक अच्छी तरह जानती थीं, परन्तु उनकी अन्तिम भेंट मेरे ही साथ हुई थी – उस दिन मद्रास में उन्होंने कितना अच्छा व्यवहार किया था, मानो अच्छाई पूरी तौर से उनका एक स्वाभाविक गुण था। यहाँ के जो हिन्दू लोग उन्हें जानते थे, वे सचमुच ही दु:ख से अधीर हैं – यह देखकर ही समझ में आता है। हम लोगों के साथ सब समय काम करनेवाला एक लड़का यह समाचार सुनने के बाद तीन-चार घण्टे स्तब्ध होकर बैठा रहा। एक साधु सारे अपराह्न में बैठे रहे और गुडविन के विषय में प्रेमभरे मधुर संस्मरण सुनाते रहे। बद्री शाह इस अंचल के सबसे धनी व्यक्ति हैं; उन्होंने बड़े सबेरे ही इन साधु के पास आकर कहा था कि उनका मन मानो कह रहा है कि उनका भाई गोविन्द लाल निश्चय ही मर चुका है। जब टेलिग्राम आया, तो स्वामी सदानन्द उसे छिपाये रखना चाहते थे, क्योंकि स्वामीजी बाहर गये हुए थे और वह उन्हीं के नाम आया था, परन्तु वे अपनी आँखों से बहते आँसुओं को रोक नहीं सके; और ये व्यक्ति (बद्री शाह) सही बात जानने का आग्रह करने लगे। समाचार सुनने के बाद वे बोले, ''गोविन्द लाल या गुडविन – दोनों ही मेरे लिये प्राय: समान हैं।'' यहाँ सभी लोग गुडविन को इतना चाहते हैं। स्वामीजी अभी भी बाहर हैं, आज सबेरे लौट आयेंगे – यह आघात उनके लिये भयंकर होगा ... परन्तु स्वामीजी के कार्य हेतु उन्होंने अपना जीवन बलिदान कर दिया । यदि (उटकमण्ड की) जलवायु को देखा जाए, तो टायफायड नहीं, बल्कि प्लेग के कारण ही उनकी मृत्यु हुई है। गुडविन की भक्ति और सेवा में कोई कमी अथवा त्रुटि नहीं थी । वह पूर्ण मात्रा में, आप्लावित और छलकती रहती थी और भारत के नवयुग के सन्तों में प्रथम स्थान प्राप्त करने का अधिकार एक अंग्रेज का होगा। एक ऐसे पूर्ण हुए जीवन के लिये धूप-दीप, पुष्प-माला और मधुर संगीत ही उज्ज्वल भेंट हो सकती है।''

स्वामीजी ने जब यह समाचार सुना, तो उन्होंने कहा, ''मानो मेरा दाहिना हाथ ही विच्छिन्न हो गया है। यह क्षति मेरे लिए अपूरणीय है।''

यद्यपि गुडविन की मृत्यु पर स्वामीजी ने प्रथमत: शान्त प्रतिक्रिया व्यक्त की, किन्तु वह घाव बहुत गहरा था। वह घाव भर नहीं पा रहा था, क्योंकि स्वामीजी के पास निरन्तर जो पत्र आ रहे थे और वे स्वयं जो लिख रहे थे, वे उन्हें गुडविन का स्मरण करा रहे थे। अलमोड़ा में रहना उनके लिए दुष्कर हो गया था। निवेदिता को अपनी मन:स्थिति बताते हुए स्वामीजी ने कहा कि श्रीरामकृष्ण (बाह्यत:) भक्ति से पूर्ण थे, किन्तु भीतर से ज्ञानी थे, जबकि वे स्वयं बाहर से ज्ञानी दिखते हैं, किन्तु भीतर भक्ति से पूर्ण हैं। उन्होंने निवेदिता से कहा कि वे 'नारी के समान कोमल (हृदयवाले) हैं'।

निवेदिता ने गुडविन की स्मृति में जो कविता लिखी थी, उसमें 'कुछ त्रुटिपूर्ण पंक्तियाँ' थीं। स्वामीजी ने उन पंक्तियों को पुन: लिखकर एक गहन भावपूर्ण कविता की रचना की, जिसका नाम था 'उसे शान्ति में विश्राम मिले।' स्वामीजी ने वह कविता गुडविन की माता को भेजी, जिन्हें गुडविन बहुत प्रेम करते थे।

उसे शान्ति में विश्राम मिले

आगे बढ़ो ओ' आत्मन्!
अपने नक्षत्रजड़ित पथ पर,
हे परम आनन्दपूर्ण!
बढ़ो, जहाँ मुक्त विचार हैं,
जहाँ काल और देश से
दृष्टि धूमिल नहीं होती,
और जहाँ चिरन्तन शान्ति
और वरदान हैं तुम्हारे लिये!
जहाँ तुम्हारी सेवा
बलिदान को पूर्णत्व देगी,
जहाँ उदात्त प्रेम से भरे हृदयों में
तुम्हारा निवास होगा,

मधुर स्मृतियाँ देश और काल की
दूरियाँ खत्म कर देती हैं।
बलिवेदी के गुलाबों के समान
तुम्हारे पश्चात् विश्व को आपूरित करेगी।
अब तुम बन्धनमुक्त हो,
तुम्हारी खोज परमानन्द तक पहुँच गयी,
अब तुम उसमें लीन हो,
जो मरण और जीवन बन कर आता है,
हे परोपकार-रत,
हे निःस्वार्थ प्राण, आगे बढ़ो!
इस संघर्षरत विश्व की
अब भी तुम सप्रेम सहायता करो।

गुडविन की माता शोक से अधीर थीं, फिर भी उन्होंने स्वामीजी को पत्र लिखा और धन्यवाद ज्ञापित किया कि गुडविन का चरित्र स्वामीजी से अनुप्राणित था।

गुडविन की मृत्यु श्रीमती ओली बुल के लिए बहुत बड़ा आघात था। दोनों के सम्बन्ध घनिष्ठ थे। जब उन्हें आलासिंगा पेरुमल द्वारा गुडविन की मृत्यु का समाचार प्राप्त हुआ, तब श्रीमती बुल ने उन्हें पत्र लिखा। यह पत्र ब्रह्मवादिन के १६ जून, १८९८ के अंक में प्रकाशित हुआ।

प्रिय महोदय,

आपके द्वारा गुडविन की मृत्यु का समाचार प्राप्त हुआ। इससे अधिक दुखद समाचार मुझे कभी प्राप्त नहीं हुआ। हम सब जो उन्हें जानते थे, उनके लिए यह अत्यन्त दुखदायी है।

दूसरों के लिए उनका जीवन श्रद्धा की मिसाल है। अपने गुरु स्वामी विवेकानन्द और दूसरों के प्रति उनकी सेवा पूर्णतया उदार, नीरव और अथक थी...

स्वामीजी के सम्पर्क में गुडविन में नवीन आशा और विश्वास का निर्माण हुआ, जिसके परिणास्वरूप स्वामीजी के सेवक और मित्र के रूप में वे पूर्णरूपेण समर्पित हुए। गुडविन का स्थायी योगदान है – स्वामीजी के प्रकाशित व्याख्यान, जो उन्होंने लिपिबद्ध किए थे। एक सत्पुरुष की अखंडता और गरिमा इस नवयुवक में मूर्त रूप से विद्यमान थी और वह शत्रु और मित्र दोनों के प्रति समान थी। संक्षेप में कहा जाए, तो वह सहानुभूति-सम्पन्न एक सच्चा अंग्रेज था। स्वदेश अथवा विदेश जहाँ भी उसे भव्य अथवा दिव्य दिखता, उसके लिए वह उत्साही रहता था। विवेकानन्द संघ के संन्यासियों के लिए गुडविन एक ऐसा उदाहरण था, जिसने कार्य के लिए कार्य किया और प्रेम के लिए प्रेम किया।

गुडविन की मृत्यु से स्वामी विवेकानन्द के पाश्चात्य कार्य में हमें अपूरणीय क्षति हुई है।

उनके साहसी और प्रेमपूर्ण जीवन के लिए हम कृतज्ञ हैं। गुडविन ने जिन लोगों से प्रेम किया और उनकी सेवा की, उन सभी के जीवन में उसने अधिक सुख और अनुभव प्रदान किया। मैं जानती हूँ कि आपकी हम सबके प्रति भी उतनी ही सहानुभूति है, जितनी कि हमारी आपके प्रति है और हम सबकी सहानुभूति इंग्लैंड में गुडविन के परिवार के साथ है।

स्वामीजी ने भी गुडविन के विषय में एक छोटा-सा परिच्छेद लिखा था, जिसे उन्होंने अनेक समाचार पत्र एवं प्रबुद्ध भारत में भेजा। प्रबुद्ध भारत के अगस्त, १८९८ के अंक में यह प्रकाशित हुआ था :

"गुडविन की मृत्यु का खेदपूर्ण समाचार सुनकर मुझे असीम दुख हुआ। यह इतने अकस्मात रूप से हुआ कि उसकी मृत्यु के समय उसके पास रहने का मुझे बिल्कुल भी अवसर नहीं मिला। गुडविन का ऋण मैं कभी भी चुका नहीं सकूँगा। जो लोग मेरे किसी भी विचार से स्वयं को उपकृत हुआ मानते हैं, उन्हें यह जान लेना चाहिये कि उसका प्रायः प्रत्येक शब्द तक गुडविन के अथक तथा पूर्णतः निःस्वार्थ परिश्रम के फलस्वरूप ही प्रकाशित हो सका है। उसकी मृत्यु से मैं एक फौलाद के समान सच्चा मित्र, एक भक्तिमान शिष्य तथा एक अथक कर्मी खो बैठा हूँ। जगत् में ऐसे अति अल्प लोग ही जन्म लेते हैं, जो परोपकार के लिये जीते हैं।"

स्वामी प्रेमानन्द ने स्वामीजी के पाश्चात्य शिष्यों के प्रति अपनी मुधर स्मृतियाँ स्वामी विरजानन्द को लिखे पत्र में व्यक्त की थीं, "...श्रीमती सेवियर त्याग का ज्वलन्त उदाहण हैं। उनके पति भी उनके समान थे। मैं स्वामीजी के गणेश अर्थात् गुडविन और निवेदिता को भी याद करता हूँ। त्याग का क्या उत्कृष्ट आदर्श उन्होंने (अपने जीवन में) दिखाया! तुम्हें सच कहूँ, तो जिस दिन मैं मन्दिर में पूजा करता हूँ, उनकी स्मृति में फूल अर्पण करता हूँ...स्वामीजी के इन शिष्यों का मैं विनम्र दास हूँ।"

वर्तमान में जे. जे. गुडविन की स्मृति में उटकमण्ड में

शेष भाग पृष्ठ २७५ पर

ईशावास्योपनिषद (१८)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे। उन्होंने यह प्रवचन संगीत कला मन्दिर, कोलकाता में दिया था। – सं.)

वह साधक सबके प्रति कृतज्ञता का चिन्तन कर रहा है। वह प्रार्थना कर रहा है। उसके बाद उसने प्राणवायु को, शरीर के पंचतत्त्वों को विदा दे दी, शरीर को विदा दे दी, मन को भी उसने विदा दे दी, सबसे विदा लेकर वह आत्मतत्त्व में स्थित हो गया। इस प्रकार चिन्तन करते-करते वह साधक मृत्यु में लीन हो जाता है। अब शरीर जले चिता पर, उसे क्या करना है? इस शरीर को चाहे गीध नोच कर खायें, या कुत्ते नोचकर खायें, चाहे जल में मछलियाँ नोचें, चाहे और भी कोई नोचे! चाहे कोई चन्दन काष्ठ की चिता पर उसे लिटा करके जला दे, उसे क्या चिन्ता है? शरीर का काम समाप्त हो गया। उसके बाद उसके भक्त-मित्रगण उसके शरीर को चिता पर रख देते हैं और अग्नि प्रज्वलित कर सभी मानो ये मन्त्र गाते हैं। क्योंकि अगले मन्त्र में क्रिया 'विधेम' बहुवचन है। बहुवचन से यही तात्पर्य लगता है कि बहुत से लोग मिलकर प्रार्थना कर रहे हैं, यह उस सिद्ध व्यक्ति की प्रार्थना नहीं है। उपनिषद तो सतरहवें मंत्र में समाप्त हो गया। यह अठारहवाँ और अन्तिम मंत्र क्या है? मानो उसके मृत शरीर को चिता पर लिटा दिया गया, अग्नि प्रज्वलित कर दी गयी और जो लोग आये हैं, वे प्रार्थना के स्वर में कह रहे हैं –

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् –
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां
ते नम उक्तिं विधेम।। १८ ।।

हे अग्ने! तुम सुपथ में ले चलो। किसके लिए? राये, रई – कर्मफल के भोग के लिए। रई कहते हैं धन, माने हम कर्म के माध्यम से जो फल अर्जित करते हैं – अच्छे फल, वह धन ही है। उस कर्मफलरूपी धन का भोग करने के लिए, हे अग्नि, तुम हमें सत्पथ पर, सन्मार्ग पर ले चलो। मानो ये सभी मिलकर प्रार्थना कर रहे हैं। हे देव! तुम तो सब कुछ जानते हो। हमारे कर्मों को जानते हो, कर्मों के पीछे जो भाव होता है, उसको भी तुम जानते हो। मानों अग्नि से कहते हैं – हे अग्ने! तुम तो सब कुछ जानते हो। हम कर्म करते हैं, कर्म के पीछे दिखावे का भाव हो सकता है, छलना हो सकती है, प्रवंचना हो सकती है, भले ही मैं उस प्रवंचना को न समझूँ, पर हे अग्ने! तुमसे कुछ छिपा नहीं है, तुम सब कुछ जानते हो। मैं आत्मछल भले कर लूँ, पर तुमको मैं छल नहीं सकता। यह भाव कि तुम सर्वान्तर्यामी हो, तुम मन की बात जाननेवाले हो। क्या कभी मैं अपने आप से छल कर सकता हूँ? जैसे मैं कहा करता हूँ न, हम तीन मित्र हैं। एक की मृत्यु हो जाती है। हम दो मित्र उनके पास जाते हैं और कहते हैं, देखो भाभी! चिन्ता मत करो, भाई साहब नहीं रहे, पर हमलोग सभी प्रकार से तुम्हारी मदद करेंगे, तुम चिन्ता नहीं करना। मेरा मित्र भी जाकर के मदद करता है, मैं भी जाकर के मदद करता हूँ। मदद की जो क्रिया है, दोनों में समान है, पर भाव में अन्तर हो सकता है। मेरे मित्र का भाव शुद्ध है, बहुत शुचि है, पवित्र है और मेरे मन में वासना हो सकती है। यह जो वासना है, मैं आत्मछल कर सकता हूँ कि मैं तो अपने मित्र की विधवा की सहायता कर रहा हूँ, पर जो भीतर का अन्तर्यामी है, वह जानता है कि तू सहायता कर रहा है अथवा वासना से परिचालित होकर के कर रहा है। इसीलिए यहाँ पर यह कहा है – **विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्** – हे देव तुम सब कुछ जानते हो, कर्म को जानते हो, कर्म के पीछे की प्रेरणा क्या है, भाव क्या है, इसको भी जानते हो। इसलिए दया करके क्या करो? अस्मज्जुहुराणमेनो, यह जो हमारी कुटिलता है, जो भीतर में कुण्ठा है, बाहर एक दिखाते हैं, भीतर में हम दूसरे हैं, यह जो जीवन की कुटिलता है, युयोधि, उसको नष्ट कर दो, जला दो, समाप्त कर दो। **भूयिष्ठां नम उक्तिं विधेम** – हे अग्ने! हम बारम्बार वाणी के माध्यम से तुम्हारी स्तुति करते हैं। इस प्रकार उस साधक के साथी, उसके शिष्य, उसके भक्त खड़े हैं और उस सिद्ध साधक को सभी मिलकर विदा देते हैं। इसके साथ ही यहाँ उपनिषद समाप्त हो गयी।

आपने देखा, इस एक छोटी-सी उपनिषद में, ज्ञान,

आत्मा का स्वरूप, आत्मा के स्वरूप को जानने के लिए साधना कैसी-कैसी हो, अत्यन्त सूक्ष्म संकेत के माध्यम से यहाँ पर सभी बातें कह दी गयीं। जब वह मृत्यु को प्राप्त होता है, उस समय उसकी स्थिति कैसी होती है, उसका भी वर्णन यहाँ पर किया गया और ऐसा कहकर शान्ति पाठ के साथ उपनिषद समाप्त हो जाती है। वही शान्ति प्रार्थना जो प्रारम्भ में थी, पुन: उसी से समाप्त करते हैं –

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः !!!

जब उपनिषद प्रारम्भ की गई, तब इस विद्या के अनुरूप मन को लाने के लिए वहाँ पर अपने को सचेत किया गया था और जब उपनिषद का शिक्षण समाप्त हो गया, तब शान्तिपाठ से भीतर में हमें शान्ति मिल गयी, मानों हमारी समस्या का समाधान हो गया, मानों हमने तत्त्व के सम्बन्ध में एक जानकारी प्राप्त कर ली। पहले समाहितचित्त से शान्ति पाठ किया गया और अन्त में शान्तमन से शान्तिपाठ हुआ। ऐसे यह उपनिषद समाप्त होती है।

आइये, एक बार हम पुन: मुख्य विषय की आवृत्ति कर लें। विद्या और अविद्या का हमने उदाहरण दिया था – यह अविद्या, यह कर्म, कैसा है? जिसके पैर हैं, पर आँखें नहीं है, वह अन्धा है। यह विद्या कैसी है? उसके पास आँखें हैं, पर पैर नहीं है। दोनों का संयोग इसीलिए चाहिए कि विद्या की आँख के सहारे रास्ता दिखे और कर्म के पैर के सहारे हम चलें। हमें गति और दिशा दोनों की आवश्यकता है। केवल दिशा ही नहीं, गति भी और केवल गति ही नहीं, दिशा भी चाहिये।

दूसरे त्रिक् में वैयक्तिक साधना और सामाजिक साधना की चर्चा हुई थी। यदि कोई व्यक्ति वैयक्तिक साधना करता है, पर उसके भीतर में आत्मतत्त्व न हो, ईश्वर न समाया हो, तो क्या होता है? वह फिर चमत्कार के पीछे भागता है, सिद्धाई के पीछे भागता है। इसलिये हम जो वैयक्तिक साधना करते हैं, उस पर थोड़ा-सा विचार करें, आत्मविश्लेषण करके देखें! हमारे घर में पूजा-कक्ष है, मंदिर है, तो हम वहाँ दीप, अगरबत्ती जला देते हैं, फूल और नैवेद्य चढ़ा देते हैं। उसके बाद क्या करते हैं? उसके बाद हम इष्ट से माँगते हैं कि हमें यह दो, हमें वह दो। यही तो हमारी साधना है। क्या इसको साधना कहते हैं? हमारी अधिकांश साधना क्या है? जिसको हमने इष्ट के रूप में चुना, जिसकी हम पूजा करते हैं, उससे हम क्या माँगते हैं? हम भौतिक वस्तुएँ ही तो माँगते हैं। यह कोई साधना नहीं है। यह तो लेन-देन है, ईश्वर से स्वार्थ की ही बातचीत है। इसमें साधना कहाँ पर है? यहाँ आत्मतत्त्व कहाँ पर है? जिज्ञासा कहाँ है? कोई जिज्ञासा नहीं है। हाँ, हम भगवान को वहाँ पर सजा देते हैं, उनकी पूजा करते हैं और उसके बाद यही तो माँगते हैं कि सब कुछ ठीक चलता रहे, घर के सब लोग ठीक रहें, सम्पत्ति ठीक आती रहे। यह साधना तो नहीं हुई।

यदि हमारे वैयक्तिक साधना में आत्मतत्त्व न हो, वह ज्ञान न हो, उद्देश्य के सम्बन्ध में यदि चिन्तन न हो, तो जिसको हम वैयक्तिक साधना कहते हैं, वह तो हमें अन्धकार में ले जा रही है, हम तो फँस ही रहे हैं। हम इसलिए फँस रहे हैं कि हमें लग रहा है कि हम साधना कर रहें हैं, जबकि हम अपने को ठग रहे हैं, हम साधना कहाँ कर रहे हैं? हम संतुष्ट हो जाते हैं कि हमने भगवान को माला चढ़ायी या नैवेद्य चढ़ाया, ऐसा एक मिथ्या संतोष हमारे मन में आ जाता है और वह हमें गहरे अन्धकार में ले जाता हैं। ऐसी वैयक्तिक साधना का यह परिणाम है।

कोई समाज के क्षेत्र में मिलकर सामाजिक साधना करता है। यह संभूति है। सम् माने साथ में, भू माने होना, अर्थात् संघबद्ध होना, एक साथ मिलकर चलना, काम करना, यह संभूति का अर्थ है। हम सब लोग मिलकर कुछ करते हैं, जिसको हमने कहा सामाजिक साधना! अगर उसमें आत्मतत्त्व न हो, तो फिर यह तो नाम-यश की साधना ही बन जाती है, फिर अहंकार आता है और संस्था टूटने लगती है। इसीलिए कहा गया कि इस संभूति के भीतर में बहुत अमरत्व है। यदि ठीक ढंग से यह समाज-साधना चले, तो समाज-साधना में कल्याण करने की अद्भुत क्षमता है। पर क्षमता कब प्रकट होगी? जब हम उसे आत्मतत्त्व के साथ जोड़ देंगे, जब हमारा लक्ष्य आत्मतत्त्व रहेगा, तब । तब समाज साधना हमारे लिए अमरत्व का द्वार खोल देगी।

इसी प्रकार असम्भूति की जो व्यक्तिगत साधना है, यदि उसमें आत्मतत्त्व न हो, तो मनुष्य गलत रास्ते पर चला जाता है, सिद्धाई, सिद्धियों के चक्कर में पड़ जाता है या केवल स्वार्थ की ही साधना करता रहता है और सोचता रहता कि मैं साधना कर रहा हूँ, तो वह घोर अन्धकार में जाता है। इससे मनुष्य का विनाश हो जाता है।

कई लोग मेरे पास आकर कहते हैं – स्वामीजी! हम तो भगवान की पूजा करते हैं, मंदिर जाते हैं, पाठ करते

हैं, फिर भी हम पर यह दुख आया? मैं समझाने की चेष्टा करता हूँ, पर यह जरूर कहता हूँ कि आत्मविश्लेषण तो करो कि मंदिर जाते हो, पूजा-पाठ करते हो, तो माँगते क्या हो? भगवान से क्या माँगते हो? कभी ऐसा माँगा कि प्रभु! अपना तत्त्व समझा दो, कभी ऐसा कहा कि प्रभु! भक्ति दो, विवेक दो, ज्ञान दो। हम क्या करते हैं? पूजा-पाठ इत्यादि के माध्यम से स्वार्थ की ही सिद्धि तो चाहते हैं। यह आत्मछल है और इससे विनाश ही होता है। इसीलिए यहाँ पर असम्भूति के लिए विनाश शब्द ला दिया कि आत्मतत्त्व वैयक्तिक साधना में न हो, तो फिर ज्ञान की दृष्टि से, आत्मा की दृष्टि से वह विनाश ही है।

संकल्प-विकल्प करने वाले मन का नाम है क्रतो। कहा गया कि हे मन! अपने किये हुये कर्मों का स्मरण करो। कुछ लोग कहते हैं कि तूने जीवन में क्या किया, अन्तिम समय में उसका स्मरण कर, यह उसका तात्पर्य नहीं है। वह मन से कह रहा है – मन! मैं तेरे प्रति सचमुच बहुत ही आभारी हूँ। मैंने यह जो यात्रा की, यह जो साधना के क्षेत्र में मैंने adventure – पराक्रम किया, वह तेरे ही कारण किया! शरीर और मन तुम दोनों ने मेरा बड़ा साथ दिया!

मन! अब मैं तुमसे भी विदा लेता हूँ। जरा सोचो तो, साधना-काल में कैसी-कैसी बर्फीली चोटियों पर हमलोग चढ़े! कितना आनन्द आया! जब हम किसी यात्रा पर जाते हैं, पर्वतारोहण करते हैं, उस समय कठिनाइयाँ जो आती हैं, जोखिम जो आते हैं, ठीक है, उस समय तो ऐसा लगता है कि अरे अब मरे, तब मरे, चोट भी लगती है, चोट का कष्ट भी होता है, पर जीवन भर उसका आनन्द बना रहता है। जब हम किसी से यात्रा का वर्णन करते हैं, तो कितने गद्गद कंठ से वर्णन करते हैं – अरे भाई, क्या मजा आया! क्या आनन्द आया! अरे चोट लगी, वह चोट तो ठीक हो गई, पर वहाँ हमें जो दृश्य देखने को मिले, जो पराक्रम किया, उसमें क्या आनन्द मिला! जिसको भी बताते हैं, उसे भी आनन्द मिलता है! मन! जरा विचार करके तो देख, जिस समय हम रूप से अरूप में जा रहे थे, कितना साहसिक कार्य करने को मिला। कैसी-कैसी बातें आयीं! तुमने भी कितने-कितने खेल खेले मन, पर अन्त में देखो क्या आनन्द आया! साधना के क्षेत्र में जो कुछ किया है, उन सबका स्मरण कर! कैसे गुरु के पास गये, गुरु ने कैसी बाते बतायीं! जो प्रश्न था, जो समस्या थी, उसका समाधान गुरुजी ने कैसे किया! इस प्रकार मृत्यु-शय्या पर पड़ा वह सारी बातें याद कर रहा है, अपनी साधनात्मक वृत्तियों को याद कर रहा है, अपने साधनात्मक जीवन के सम्बन्ध में वह चिन्तन कर रहा है। उसका आनन्द ले रहा है, जैसे हम किसी को यात्रा के बारे में बतायें, तो आनन्द आता है, कभी यात्रा के बारे में मन में सोचें तो आनन्द आता है। जब बताने के लिए दूसरा कोई बाहर न हो, तो हम सोच-सोचकर अपने मन में ही आनन्दित होते हैं। यह सोचकर साधक आनन्दित हो रहा है और मन से कहता है – मन! तूने बहुत साथ दिया ! शरीर! तूने बहुत साथ दिया! प्राण! तुमने बहुत साथ दिया। तुम सब लोगों का मैं अत्यन्त आभारी हूँ, अब उस आनन्द के स्मरण की यही बेला है, अब हम तुमलोगों से विदा लेते हैं। धन्यवाद तुमलोगों को, जो तुमलोगों ने आत्मस्वरूप को प्राप्त करने में हमारी सहायता की, तुमलोग बड़भागी हो, साधुवाद के पात्र हो। इसके बाद उस साधक को चिता पर लिटाकर आग लगा देते हैं और उसे सुमार्ग पर ले जाने की अग्नि से प्रार्थना करते हैं। शान्तिमन्त्र के साथ उपनिषद समाप्त हो जाती है। **(समाप्त)**

पृष्ठ २७२ का शेष भाग

स्मारक स्थित है। इस स्मारक की स्थापना उनके भारतीय प्रशंसकों द्वारा १९६७ में श्रद्धांजलि के रूप में की गई । स्मारक के चारों बाजुओं में से एक पर स्वामीजी की कविता 'उसे शान्ति में विश्राम मिले' उत्कीर्ण की गई है। इस स्मारक की प्रतिष्ठा भारत के आर्कबिशप द्वारा की गई। इस समारोह में लगभग चार सौ लोग उपस्थित थे, जिनमें ईसाई, हिन्दू और रामकृष्ण संघ के साधु थे । एक उचित श्रद्धांजलि ऐसे व्यक्ति के प्रति जिन्होंने प्राच्य और पाश्चात्य को अपने जीवन द्वारा जोड़ने का प्रयास किया।

स्वामीजी के साहित्य का पठन और अध्ययन करना ही गुडविन के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी। स्वामीजी के मनुष्य के दिव्यत्व के सन्देश को विश्व में प्रचारित करने के महान उद्देश्य हेतु गुडविन ने अपना जीवन समर्पित कर दिया था। आज हम जो स्वामीजी का सन्देश पढ़ पा रहे हैं, इसमें अधिकांश श्रेय गुडविन के अथक प्रयत्नों का ही है। यदि विवेकानन्द साहित्य में उल्लिखित स्वामीजी के महान उपदेशों से हम थोड़ा भी उन्नत और प्रेरित हुए हैं, तो स्वामीजी के निष्ठावान गुडविन के प्रति हम अपनी कृतज्ञता व्यक्त करना न भूलें। **(समाप्त)**

दृग्-दृश्य-विवेकः (१)

(अनुवाद : स्वामी विदेहात्मानन्द)

(यह ४६ श्लोकों का 'दृग्-दृश्य-विवेक' नामक प्रकरण ग्रन्थ 'वाक्य-सुधा' नाम से भी परिचित है। इसमें मुख्यत: 'दृश्य' के रूप में जीव-जगत् की और 'द्रष्टा' के रूप में 'आत्मा' या 'ब्रह्म' पर; और साथ ही 'सविकल्प' तथा 'निर्विकल्प' समाधियों पर भी चर्चा की गयी है। ग्रन्थ छोटा, परन्तु तत्त्वबोध की दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान है। ज्ञातव्य है कि इसके १३वें से ३१वें श्लोकों के बीच के आनेवाले १६ श्लोक 'सरस्वती-रहस्य-उपनिषद्' में भी प्राप्त होते हैं। मूल संस्कृत से इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है – सं.।)

दृश्य और द्रष्टा

रूपं दृश्यं लोचनं दृक् तद्दृश्यं दृक् तु मानसम् ।
दृश्या धीवृत्तयस्साक्षी दृगेव न तु दृश्यते ।।१।।

अन्वयार्थ – **रूपम्** रूप **दृश्यम्** दृश्य है; (और) **लोचनम्** नेत्र **दृक्** द्रष्टा है; **तु तत्** वह (नेत्र) **दृश्यम्** दृश्य है; (और) **मानसम्** मन (उसका) **दृक्** द्रष्टा है; **धी-वृत्तयः** मन तथा उसकी वृत्तियाँ **दृश्याः** दृश्य हैं; (और) **साक्षी** साक्षी (उनका) **दृक् एव** द्रष्टा ही है, **तु** परन्तु (साक्षी का) **न दृश्यते** कोई द्रष्टा नहीं।

भावार्थ – रूप दृश्य है (और) नेत्र (उसका) द्रष्टा है; वह (नेत्र) दृश्य है और मन उसका द्रष्टा है; मन तथा उसकी वृत्तियाँ दृश्य हैं और साक्षी उनका द्रष्टा है; परन्तु साक्षी का कोई (अन्य) द्रष्टा नहीं होता।

नील-पीत-स्थूल-सूक्ष्म-ह्रस्व-दीर्घादि-भेदतः ।
नानाविधानि रूपाणि पश्येल्लोचनमेकधा ।।२।।

अन्वयार्थ – **नील-पीत-स्थूल-सूक्ष्म-ह्रस्व-दीर्घ-आदि-भेदतः** नीला, पीला, स्थूल-सूक्ष्म, छोटा-बड़ा – आदि भेदों के द्वारा **नाना-विधानि** विभिन्न प्रकार के **रूपाणि** रूपों को **लोचनम्** नेत्र **एकधा** एक **पश्येत्** देखता है।

भावार्थ – नेत्र (स्वयं) एक रहकर भी – नीला-पीला, स्थूल-सूक्ष्म, छोटा-बड़ा – आदि भेदों के द्वारा विभिन्न प्रकार के रूपों को देखता है।

मन – इन्द्रिय-विषयों का द्रष्टा है

आन्ध्य-मान्द्य-पटुत्वेषु नेत्रधर्मेषु चैकधा ।
संकल्पयेन्मनः श्रोत्रत्वगादौ योज्यतामिदम् ।।३।।

अन्वयार्थ – **नेत्र-धर्मेषु** नेत्र के गुणों में **आन्ध्य-मान्द्य-पटुत्वेषु** अन्धता, मन्दता तथा निपुणता में, **मनः** मन को **एकधा** एकमात्र (गुण) **संकल्पयेत्** समझना चाहिये; **च** और **इदं** इसी (पद्धति) को **श्रोत्र-त्वक्-आदौ** श्रोत्र, त्वचा आदि (इन्द्रियों) के क्षेत्र में **योज्यताम्** उपयोग करना चाहिये।

भावार्थ – अन्धता, मन्दता तथा निपुणता आदि नेत्र के गुणों में – मन को एकमात्र गुण समझना चाहिये; और इसी (पद्धति) को श्रोत्र, त्वचा आदि (इन्द्रियों) के क्षेत्र में उपयोग करना चाहिये।

चैतन्य ही द्रष्टा है

कामः संकल्प-सन्देहौ श्रद्धाश्रद्धे धृतीतरे ।
ह्रीर्धीर्भीरित्येवमादीन् भासयत्येकधा चितिः।।४।।

अन्वयार्थ – **एवम्** इसी प्रकार **चितिः** चैतन्य – **कामः** काम, **संकल्प-सन्देहौ** संकल्प तथा सन्देह **श्रद्धाश्रद्धे** श्रद्धा तथा अश्रद्धा, **धृतीतरे** धैर्य तथा अधीरता, **ह्रीः** लज्जा, **धीः** मेधा, **भीः** भय **इति आदिन्** आदि (अन्त:करण की वृत्तियों) को **एकधा** (यह) एक **भासयति** आलोकित करता है।

भावार्थ – काम, संकल्प तथा सन्देह, श्रद्धा तथा अश्रद्धा, धैर्य तथा अधीरता, लज्जा, मेधा, भय आदि (अन्त:करण की वृत्तियों) को – 'चैतन्य' – इसी प्रकार आलोकित करता है, क्योंकि यह 'एक' है।

नोदेति नास्तमेत्येषा न वृद्धिं याति न क्षयम् ।
स्वयं विभात्यथान्यानि भासयेत् साधनं विना ।।५।।

अन्वयार्थ – **एषा** इस (चैतन्य) का – **न उदेति** न उदय होता है (और) **न अस्तम् एति** न अस्त होता है; (यह) **न वृद्धिं** न वृद्धि को **याति** प्राप्त होता है (और) **न क्षयं** न क्षय को **(याति)** प्राप्त होता है। **अथ** फिर (यह चैतन्य) **स्वयं** स्वयं **विभाति** प्रकाशित होता है (और) **विना** बिना (किसी बाह्य) **साधनं** साधन के **अन्यानि** अन्य (पदार्थों) को **भासयेत्** आलोकित करता है।

भावार्थ – इस (चैतन्य) का – न उदय होता है (और) न अस्त होता है, न इसमें वृद्धि होती है (और) न क्षय होता है। फिर, (यह चैतन्य) स्वयं प्रकाशित होता है और बिना (किसी बाह्य) साधन के अन्य (पदार्थों) को आलोकित करता है। **(क्रमशः)**

वैदिक वाङ्मय के ग्रंथ

डॉ. के. डी. शर्मा
सेवानिवृत्त प्राचार्य, शिक्षा महाविद्यालय, बीकानेर

वेद भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत हैं। वेद मंत्रों की व्याख्या, कर्मकाण्डपरक यज्ञ, मंत्रों का विभिन्न यज्ञकर्मों में विनियोग, आख्यान-उपाख्यान, वर्णाश्रम व्यवस्था, पुनर्जन्म सम्बन्धी सिद्धान्त और वंश-परम्परा आदि का जिन ग्रंथों में उल्लेख है, उन ग्रंथों को ब्राह्मण ग्रंथ अथवा 'ब्राह्मण' कहते हैं। 'ब्राह्मण' शब्द का तात्पर्य यहाँ ब्राह्मण वर्ण से नहीं है। प्रत्येक वेद तथा उसकी शाखाओं के अपने-अपने ब्राह्मण ग्रंथ हैं। ऋग्वेद के ऐतरेय ब्राह्मण, कौषीतकि ब्राह्मण, सामवेद के पंचविंश, षडविंश, जैमिनीय ब्राह्मण, शुक्लयजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण, कृष्णयजुर्वेद का तैत्तिरीय ब्राह्मण तथा अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण मुख्य ब्राह्मणग्रंथ हैं। ब्राह्मणग्रंथों के परिशिष्ट-ग्रंथ आरण्यकग्रंथ हैं। इन ग्रंथों का अध्ययन-अध्यापन अरण्य अर्थात् वनों में वानप्रस्थाश्रमियों द्वारा एकांत वातावरण में किया जाता था। इन ग्रंथों में यज्ञों की आध्यात्मिक व दार्शनिक व्याख्या की गई है तथा कर्ममार्ग व ज्ञानमार्ग का समन्वय किया गया है। ऋग्वेदीय ऐतरेयारण्यक व शांखायनारण्यक या कौषीतकि आरण्यक, शुक्लयजुर्वेदीय बृहदारण्यकोपनिषद्, कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयारण्यक व मैत्रायणीयारण्यक तथा सामवेदीय तवलकारण्यक या जैमिनीयारण्यक व छान्दोग्यारण्यक मुख्य आरण्यकग्रंथ हैं। अथर्ववेद का कोई आरण्यक ग्रंथ नहीं है।

उपनिषद् (वेदान्त)

विषय की दृष्टि से वेदों के तीन भाग हैं – कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। वेद के ज्ञानकाण्ड को ही उपनिषद् कहते हैं। वेद के शीर्षस्थानीय तथा अन्तिम भाग होने के कारण उपनिषद् को वेदान्त भी कहते हैं। उपनिषदों के मंत्रों का समन्वय और इनकी मीमांसा वेदव्यास जी ने वेदान्त दर्शन (ब्रह्मसूत्र) में की है और उपनिषद् रूपी गौओं से गोपालनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण ने सुधी भोक्ताओं के लिए गीतामृतरूपी दुग्ध का दोहन किया था। अत: वैदिक धर्म के ये तीन ग्रंथरत्न (उपनिषद्, वेदान्तदर्शन या ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भगवद्गीता) प्रस्थानत्रयी कहलाते हैं। विद्वान् आचार्यों ने इस प्रस्थानत्रयी के प्रकाश से सत्य का अन्वेषण किया और अपने-अपने भाष्य लिखे, परन्तु अद्वैत वेदान्त का प्रतिपादन करनेवाले भाष्यों में आद्यशंकराचार्यजी का भाष्य सर्वोपरि माना जाता है। उपनिषद् ब्रह्मविद्या के उत्कृष्ट स्रोत हैं।

पश्चिमीय विद्वानों मैक्समूलर, शोपेनहर और गोल्डस्टकर आदि ने उपनिषदों के महत्त्व को स्वीकारा। मैक्समूलर के अनुसार ''उपनिषद् वेदान्त दर्शन के आदि स्रोत हैं, जिनमें मुझे मानवी भावना अपने उच्चतम शिखर पर पहुँच गयी मालूम होती है।'' शोपेनहर के अनुसार ''विश्व में ऐसा कोई स्वाध्याय नहीं है, जो उपनिषदों के समान उपयोगी और उन्नति की ओर ले जाने वाला हो। ये उच्चतम बुद्धि की उपज हैं। भविष्य में उपनिषद् ही विश्व का धर्म होगा।'' डॉ. गोल्डस्टकर के अनुसार ''वेदान्त (उपनिषद्) सबसे ऊँचे स्तर के यन्त्र है, जिसे पूर्वीय विचारधारा ने प्रवृत्त किया है।'' जिसने उपनिषद् रूपी अमृत का पान किया अर्थात् उसे अपने आचरण में लाया, वह मुक्त हो गया। उसके लिए न कोई कर्तव्य है, न कुछ प्राप्तव्य। ब्रह्माकार वृत्ति का महत्त्व वेदान्त-सिद्धान्तमुक्तावलीकार इस श्लोक में करते हैं –

कुलं पवित्रं जननीं कृतार्था वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपारसच्चित्सुखसागरेऽस्मिँल्लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः।।

स्कन्द, माहेश्वर, कौमार ५५.१४०

अर्थात् 'जिसका चित्त उस अपार सत्-चित्-आनन्द-सागर रूप परब्रह्म में लीन हो गया, उसका कुल पवित्र हो जाता है, माता कृतकृत्य हो जाती है और उसके कारण पृथ्वी भी पुण्यवती हो जाती है।' ब्रह्मवेत्ता की दृष्टि में द्रष्टा, दृष्टि और दृश्य की त्रिपुटी का भेद समाप्त हो जाता है, असत्, जड़ और दुख उसे प्रतीत नहीं होते तथा उसकी दृष्टि में सारा जगत् सच्चिदानन्दस्वरूप हो जाता है।

आद्यशंकाराचार्य ने अपने कठोपनिषद् के भाष्य में उपनिषद् शब्द की व्याख्या की है – उपनिषद् शब्द तीन शब्दों - उप-नि-सद् से बना है। 'उप' का अर्थ है पास बैठना (गुरु के पास), 'नि' का अर्थ निष्ठापूर्वक और 'सद्' धातु के तीन अर्थ हैं – विशरण (विनाश), गति (प्राप्ति) और अवसादन (शिथिल होना)। अत: उपनिषद् वह विद्या है, जिसका अध्ययन गुरु के पास निष्ठापूर्वक बैठकर किया जाता है, जिससे अविद्या का विनाश होता है, मुमुक्षु को परम तत्त्व की प्राप्ति होती है तथा गर्भवास, जन्म, मरण, जरा आदि के बंधन शिथिल होते हैं। कुछ भाष्यकारों के अनुसार

ब्रह्म के रहस्य को प्रकट करनेवाला ज्ञान ही उपनिषद् है।

वेद की प्रत्येक शाखा का अपना एक उपनिषद् है। चूँकि वेद की ११८० शाखाएँ थीं, अत: कुल ११८० उपनिषदें थीं। परन्तु वर्तमान में २२२ उपनिषद् ही प्राप्त हैं। मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार १०८ उपनिषद् ही मुख्य हैं। इन उपनिषदों में कुछ मंत्र भाग (संहिता) हैं, कुछ ब्राह्मण ग्रंथों के भाग तथा कुछ आरण्यक ग्रंथों के भाग हैं। मंत्र भाग के उपनिषदों में केवल दो ही उपनिषद् उपलब्ध हैं : ईशावास्योपनिषद् तथा श्वेताश्वतरोपनिषद्। ईशावास्योपनिषद् शुक्लयजुर्वेद का चालीसवाँ अध्याय है तथा श्वेताश्वतरोपनिषद् कृष्णयजुर्वेद की श्वेताश्वतर शाखा के अंतिम भाग के छ: अध्याय हैं। चूँकि ये दोनों उपनिषद् वेदों के मंत्र भाग से सम्बन्धित हैं, अत: इन दोनों उपनिषदों का महत्त्व अधिक है। इसके अतिरिक्त अन्य उपनिषद् वेद की विभिन्न शाखाओं से सम्बन्धित ब्राह्मणग्रंथ एवं आरण्यग्रंथों के भाग हैं। उपनिषद् प्रतिपादित ज्ञान दृश्य और श्रुत ज्ञान नहीं है, अपितु अनुभूत ज्ञान है। समस्त उपनिषदों की परिसमाप्ति आत्मा के यथार्थ स्वरूप का निरूपण करने में ही होती है। वेदों के निम्नलिखित तेरह उपनिषद् महत्वपूर्ण हैं –

ऋग्वेद – ऐतरेयोपनिषद् तथा कौषीतकि उपनिषद्

शुक्लयजुर्वेद – ईशावास्योपनिषद् तथा बृहदारण्यकोपनिषद्

कृष्णायजुर्वेद – कठोपनिषद्, तैत्तिरीयोपनिषद् तथा श्वेताश्वतरोपनिषद्

सामवेद – केनोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद् एवं मैत्रायणीयोपनिषद्

अथर्ववेद – प्रश्नोपनिषद्, मुण्डकोपनिषद् तथा माण्डूक्योपनिषद्

उपनिषदों का मुख्य विषय ब्रह्मज्ञान या आत्मतत्त्व है, जिससे ब्रह्म-प्राप्ति रूप मोक्ष मिलता है। उपनिषदें जीव को अल्पज्ञान से अनन्त ज्ञान की ओर, सीमित सामर्थ्य से अनन्त शक्ति की ओर, असत् से सत् की ओर (असतो मा सद्गमय), अन्धकार से प्रकाश की ओर (तमसो मा ज्योतिर्गमय), मृत्यु से अमृत की ओर (मृत्योर्मामृतं गमय), सांसारिक दुखों से अनन्त आनन्द की ओर तथा जन्म-मृत्यु-बन्धन से शाश्वत शान्ति की ओर ले जाती हैं। जिज्ञासु साधक को साधनचतुष्टय अर्थात् (१) नित्य-अनित्य का विवक, (२) ऐहिक तथा पारलौकिक भोगों में वैराग्य (३) षट्सम्पत्ति – (क) शम (मन का नियन्त्रण) (ख) दम (इन्द्रियों का दमन) (ग) उपरति (विषयों से उपराम) (घ) तितिक्षा (प्रतिकूल परिस्थितियों को सहर्ष स्वीकार करना (च) श्रद्धा (गुरु एवं शास्त्रों में पूर्णनिष्ठा और (छ) समाधान (अपनी बुद्धि को सब प्रकार से परमात्मा में स्थिर करना) तथा (४) मुमुक्षुता (अहंकार एवं देह आदि जितने भी अज्ञान-कल्पित बन्धन हैं, उनको अपने स्वरूप के ज्ञान द्वारा त्यागने की इच्छा) सम्पन्न होना आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना साधक को ब्रह्मज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त उपनिषदों का उपदेश देनेवाला सद्गुरु भी श्रोत्रिय (वेदों के ज्ञाता) तथा ब्रह्मनिष्ठ (तत्त्वदर्शी) होना आवश्यक है। उपनिषदों में वर्णित ब्रह्मज्ञान मन्त्रद्रष्टा ऋषियों का अनुभूत ज्ञान है।

उपनिषदों में प्रतिपाद्य विषय

(१) जीव-ब्रह्म ऐक्य – साधनचतुष्टय-सम्पन्न जिज्ञासु श्रवण, मनन, निदिध्यासन करते हुए ध्यान आदि के अभ्यास से सम्यक् तत्त्वज्ञान प्राप्त कर ब्रह्म के तद्रूप हो जाता है। मुण्डकोपनिषद् (३.२.९) का उपदेश 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति' अर्थात् ब्रह्म को जाननेवाला ब्रह्म हो जाता है, जीव-ब्रह्म ऐक्य का प्रतिपादन करता है। श्रुति के अनुसार 'जीवो ब्रह्मैव नापर:' अर्थात् जीव ब्रह्म ही है, ब्रह्म से पृथक नहीं है। जीव ब्रह्म से अभिन्न होते हुए भी अविद्या के कारण अपने वास्तविक आत्मस्वरूप को विस्मृत कर स्वनिर्मित बंधन के कारण अनन्त दुख भोगता है। जिस प्रकार अन्धकार में रज्जु ही सर्परूप दिखायी देती है, उसी प्रकार अविद्या के कारण निर्गुण-निराकार ब्रह्मसत्ता ही सगुण साकार जगत्-रूप दिखायी देती है। ज्ञानावस्था में जो ब्रह्म है, वही अज्ञान अवस्था में जगत्-रूप प्रतीत होता है। जगत् की सत्य प्रतीति और ब्रह्म की अप्रतीति अज्ञान अवस्था में होती है। अज्ञान की निवृत्ति होते ही विद्यारूपी प्रकाश द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्मसत्ता ही पारमार्थिक सत्य है, महानारायणोपनिषद् (३.२) के अनुसार 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन' अर्थात् 'एकमात्र अद्वितीय ब्रह्म ही है। यहाँ अनेक नाम की वस्तु कुछ भी नहीं है।' इस श्रुति के अनुसार भी यही सिद्ध होता है कि ब्रह्म से भिन्न सब प्रतीतिमात्र ही है। जीव-ब्रह्म ऐक्य ज्ञान-निष्ठा ही उपनिषदों के ज्ञान की पराकाष्ठा है।

(२) परमात्मा की सर्वव्यापकता – परमात्मा सर्वव्यापी है। ईशावास्योपनिषद् के प्रथम मंत्र के अनुसार 'ॐ ईशावास्यामिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्' अर्थात् जगत् में जो कुछ स्थावर-जंगम (चर-अचर) संसार है, वह सब

परमात्मा के द्वारा आच्छादनीय है, अत: सम्पूर्ण जगत् को भगवत्स्वरूप अनुभव करना चाहिये। निर्गुण-निराकार ब्रह्म से सारा जगत् परिपूर्ण है, अत: चिन्मय तत्त्व की सर्वत्र अनुभूति करनी चाहिये। छान्दोग्योपनिषद् (३.१४.१) कहती है कि 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत अर्थात् 'यह सारा जगत् निश्चय ही ब्रह्म है और यह समस्त जगत् ब्रह्म से ही उत्पन्न होनेवाला, ब्रह्म में ही लीन होनेवाला और ब्रह्म में ही चेष्टा करने वाला होता है। अत: राग-द्वेष रहित होकर ब्रह्म की उपासना करें।' इससे भी सिद्ध होता है कि ब्रह्म सर्वव्यापक है। छान्दोग्योपनिषद् (७.२५.१) के अनुसार सनत्कुमारजी नारदजी को 'भूमा' का उपदेश देते हैं कि 'वह भूमा नीचे है, वही ऊपर है, वही पीछे है, वही आगे है, वही दायीं ओर, वही बायीं ओर है और वही सब है।' चूँकि ये सारे लक्षण परमात्मा के हैं अत: यह 'भूमा' शब्द परमात्मा का ही द्योतक है। मुण्डकोपनिषद् (२.२.११) में भी इसी प्रकार का वर्णन है कि 'यह अमृतस्वरूप परब्रह्म ही सामने है, ब्रह्म ही पीछे है, ब्रह्म ही दायीं ओर, ब्रह्म ही बायीं ओर, ब्रह्म ही नीचे और ब्रह्म ही ऊपर की ओर फैला हुआ है। यह सम्पूर्ण जगत् सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही है।' इस प्रकार इस मंत्र में परमात्मा की सर्वव्यापकता का प्रतिपादन किया गया है। तैत्तिरीयोपनिषद् (२.६) में कहा गया है कि 'तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्' अर्थात् परमेश्वर ने जगत् की रचना करके स्वयं जगत् में साथ-साथ प्रविष्ट हो गया यानी जो कुछ यह दिखाई देता है और अनुभव में आता है, वह सब-का-सब सत्यस्वरूप परमात्मा ही है।

(३) ब्रह्म का स्वरूप – ब्रह्म के निर्गुण निराकार स्वरूप के सम्बन्ध में माण्डूक्योपनिषद् के मंत्र ७ में कहा गया है कि वह अदृष्टम् (जो देखा नहीं जा सकता), अव्यवहार्यम् (जो व्यवहार में नहीं लाया जा सकता), अग्राह्यम् (जो पकड़ में नहीं आ सकता), अलक्षणम् (जिसका कोई लक्षण नहीं), अचिन्त्यम् (जो चिन्तन में नही आ सकता), अव्यपदेश्यम् (जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता), एकात्मप्रत्ययसारम् (एकमात्र आत्मसत्ता की प्रतीति ही जिसका प्रमाण है।), प्रपंचोपशमम् (जिसमें प्रपंच का सर्वथा अभाव है), शान्तम् (सर्वथा शान्त), शिवम् (कल्याणमय) तथा अद्वैत (अद्वितीय तत्त्व) है। छान्दाग्योपनिषद् (८.७.१) में 'देवराज इन्द्र तथा असुरों के राजा विरोचन सम्बन्धी आख्यान' में प्रजापति उपदेश देते हैं कि 'परमात्मा पापशून्य, जरारहित, मृत्युरहित, विशोक, क्षुधारहित, पिपासारहित, सत्यकाम और सत्यसंकल्प है, उसे विशेष रूप से जानने की इच्छा करनी चाहिये।' बृहदारण्यकोपनिषद् (३.७.३) में याज्ञवल्क्य-आरुणि संवाद में याज्ञवल्क्य कहते हैं कि 'जो पृथ्वी में रहनेवाला पृथ्वी के भीतर है, जिसे पृथ्वी नही जानती, जिसका पृथ्वी शरीर है और जो भीतर रहकर पृथ्वी का नियमन करता है, वह प्राणियों का आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। आगे के मंत्रों (३.७.४-१४) में इसी प्रकार का उपदेश जल, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, द्युलोक, आदित्य, दिशाएँ, चन्द्रमा, आकाश, तम और तेज आदि के सन्दर्भ में दिया गया है। इस उपदेश को अधिदैवत-दर्शन कहा गया है। आगामी मंत्रों में (३.७.१५-२३) ऐसा ही उपदेश भूत, प्राण, वाणी, नेत्र, श्रोत्र, मन, त्वक्, विज्ञान और वीर्य के लिए दिया गया है। इन समस्त मंत्रों का भाव है कि इस अन्तर्यामी आत्मा से भिन्न कोई दिखायी नहीं देनेवाला, किन्तु देखनेवाला है, सुनायी न देनेवाला, किन्तु सुननेवाला, मन का अविषय किन्तु मनन करनेवाला और स्वयं अविज्ञात किन्तु विज्ञाता है, वह समस्त प्राणियों की आत्मा अन्तर्यामी अमृत है और इस प्रकार ईश्वर (आत्मा) से भिन्न अन्य सब विनाशी हैं।

छान्दोग्योपनिषद् (६.१.३ तथा ६.१६.३) में 'आरुणि-श्वेतकेतु' आख्यायिका में महर्षि आरुणि अपने पुत्र श्वेतकेतु को उपदेश देते हैं कि 'जिसके द्वारा अश्रुत (बिना सुना हुआ) श्रुत (सुना हुआ) हो जाता है, अमत (बिना विचार हुआ) मत (विचारा हुआ) हो जाता है और अविज्ञात (अनिश्चित) विज्ञात (निश्चित) हो जाता है, वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतो ! 'तत्त्वमसि' (वही तू है) अर्थात् वाक्य 'तत्त्वमसि' विकाररूप मिथ्या देहादि में अधिकृत जीवात्मभाव की निवृत्ति करनेवाला ही है।

(४) ब्रह्म ही जगत् का निमित्त एवं उपादान कारण – ऐतरेयोपनिषद् के प्रथम अध्याय के तीनों खण्डों में परमात्मा द्वारा लोक की रचना, लोकपालों की रचना, हिरण्यगर्भ की रचना, ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों की रचना, मनुष्य शरीर की रचना तथा इन सबके लिये भोग्य पदार्थों की रचना की गयी। अत: परब्रह्म परमात्मा ही इस जगत् के निमित्त कारण हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् के ब्रह्मानन्दवल्ली के षष्ठ अनुवाक में कहा गया है कि परब्रह्म ने विचार किया – ''मैं नानारूप में उत्पन्न होकर बहुत हो जाऊँ। तब वह जगत् की रचना करके स्वयं भी जगत् के कण-कण में प्रविष्ट हो गया।'' अत: परमात्मा इस जगत् के उपादान कारण भी हैं।

शेष भाग पृष्ठ २८४ पर

आध्यात्मिक जिज्ञासा (४२)

स्वामी भूतेशानन्द

(२५)

प्रश्न – श्रीमाँ एक स्थान पर प्रश्न कर रही हैं – गुरु कौन हैं? उसके बाद स्वयं उत्तर दे रही हैं – जो जीवों का भूत, भविष्य और वर्तमान जानते हैं, वे हैं।

महाराज – किन्तु हमलोग वह गुरु नहीं हैं। क्योंकि हमलोग जीवों का भूत-भविष्य नहीं जानते हैं। कह भी नहीं सकते हैं, ये सब बातें मैं दीक्षा के समय स्पष्ट रूप से कह देता हूँ।

– भूत-भविष्य जानते हैं कि नहीं, ऐसा कोई पूछता भी है क्या?

महाराज – बाबा! पूछने के पहले ही बता देता हूँ। (हँसते हैं सभी) पहले से ही अपने को बचाकर रखता हूँ। वैसे गुरु हमलोग नहीं है (हँसी)। ठाकुर की बात ही कहता हूँ कि मानव कभी गुरु नहीं हो सकता। गुरु एक केवल सच्चिदानन्द ही हैं। तब मानव-गुरु क्या हैं? मानव-गुरु उस सच्चिदानन्द गुरु के प्रतीक हैं। जैसे प्रतीक या प्रतिमा मिट्टी, ईंट और लकड़ी की होती है, वह देवता नहीं है, ठीक वैसे ही मानव-गुरु सच्चिदानन्द गुरु के प्रतीक हैं। वे सच्चिदानन्द गुरु ही जीव पर कृपा करते हैं। तब मानव गुरु क्या करते हैं? क्योंकि सामान्य व्यक्ति हमेशा सच्चिदानन्द गुरु से आवश्यक मार्ग-दर्शन नहीं पाता है, इसलिए सच्चिदान्द गुरु के निर्देश को मानव-गुरु उन लोगों तक पहुँचाते हैं। मानव-गुरु केवल माध्यम हैं। उसका अवलम्बन कर सच्चिदानन्द गुरु जीव को निर्देश देते हैं और कृपा करते हैं। गुरु को ब्रह्मा, विष्णु आदि कहा गया है। मानव-गुरु तो ब्रह्मा, विष्णु नहीं हैं और वे हो भी नहीं सकते हैं। ये सब विशेषण सच्चिदानन्द गुरु का निर्देश करते हैं। मानव कभी गुरु नहीं हो सकता। क्योंकि गुरु नित्य हैं। मरणशील गुरु कैसे नित्य हो सकते हैं? गुरु का ध्यान किया जाता है। गुरु की मृत्यु के बाद, क्या गुरु हैं कि उनका ध्यान करेंगे? जो मर गये, उनका ध्यान करके क्या होगा? मानव-गुरु सच्चिदानन्द गुरु के प्रतीक मात्र हैं। उनका विनाश होता है। किन्तु सच्चिदानन्द गुरु नित्य हैं।

प्रश्न – ठाकुर कहते हैं कि यहाँ जो लड़के आते हैं, उन्हें दो बातें जानने से ही हो जायेगा। तब क्या अधिक साधन-भजन नहीं करना होगा?

महाराज – नहीं, तीन बातें, जानने से ही होगा। पहला, मैं कौन हूँ? दूसरा, वे लोग कौन हैं? और तीसरा, हमलोगों का परस्पर सम्बन्ध क्या है?

– हाँ। इसका क्या अर्थ है महाराज?

महाराज – इसे जानने के लिए क्या कम साधना की आवश्यकता है। 'मैं कौन हूँ' अर्थात् – जो कह रहे हैं, माने स्वयं श्रीरामकृष्ण – ईश्वर हैं। 'वे सब', माने – भगवान के भक्त (हमारे भक्त) । दोनों में सम्बन्ध है, अर्थात् ये उनके अंग हैं। उनके साथ सदा संयुक्त हैं, उनके अन्तरंग हैं।

प्रश्न – गीता में भगवान ने कहा है – योगी कोई संकल्प नहीं करेगा। संकल्प माने क्या होता है?

महाराज – संकल्प माने – यह करूँगा, वह करूँगा, इस प्रकार सोचना।

– हमलोग तो सर्वदा संकल्प कर रहे हैं,

महाराज – कैसे?

– यह भवन बनाकर उसको बनाऊँगा, ऐसा।

महाराज – क्या तुमलोग कर्मयोगी हो?

– हाँ, हमलोग कर्मयोगी हैं।

महाराज – किन्तु स्वामीजी ने कहा है, कर्मयोगी घोर कर्म में भी परम शान्त रहेगा। इसलिए तुमलोग अभी योगी नहीं हो, योगी होना चाहते हो।

– किन्तु महाराज! अभी हमलोगों की जो स्थिति है, उसमें संकल्प तो करना ही होगा।

महाराज – वैसा क्यों करना होगा? संकल्प करना ही होगा, ऐसा मत कहो। बल्कि यह कहो कि संकल्प किये बिना हमलोग अभी रह नहीं सकते। वह कार्य तो संकल्प नहीं करने से भी होगा।

प्रश्न – महाराज! कर्म को ठाकुर को समर्पित करते हैं या ठाकुर का कार्य ठाकुर को समर्पित कर रहा हूँ, यह जो भाव है, क्या इसे कर्म के अन्त में किया जाता है?

महाराज – समर्पण या निवेदन कार्य के अन्त में नहीं

किया जाता। अन्त में करूँगा, ऐसा सोचने से वह नहीं होता, कार्य के बीच में ही करना पड़ता है।

– किन्तु महाराज! कर्म समाप्त नहीं होने पर क्या समर्पण करेंगे? खीर बनाते-बनाते समर्पण किया जाता है या खीर बनाने के बाद?

महाराज – तुम कर्म को (प्रोडक्ट) कर्मफलानुसार समर्पण नहीं कर रहे हो। तुम अपना (परफार्मेन्स) कर्मानुष्ठान समर्पण कर रहे हो। अर्थात् केवल कर्म का मूल फल नहीं, उसके साथ ही अपनी कर्म के प्रति दृष्टि और मनोभावना भी समर्पित कर रहे हो। कर्म जब, जितना हो रहा है, उतना ठाकुर को निवेदन कर रहा हूँ, इसी भावना से कर्म किया जाता है। ऐसी भावना से कर्म नहीं करने से आसक्ति हो जाती है। जो काम कर रहे हैं, उसे करते-करते समर्पण की बात है। कहते हैं न – "यद्यत्कर्म करोमि तत्तद् जगन्मात: तव पूजनम्।।" 'करोमि' (करता हूँ) कह रहे हैं, 'करिष्यामि' (करूँगा) नहीं कर रहे हैं। ठीक वैसे ही, "यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।" अर्थात् जो-जो कर्म कर रहे हो, उसे ही मुझे समर्पित करो।

प्रश्न – महाराज! ठाकुर ने कहा है – सन्ध्या गायत्री में लय होती है। गायत्री ओंकार में लय होती है। इसका क्या अर्थ है?

महाराज – साधन-भजन करते-करते जब साधक बहुत उन्नत अवस्था का बोध करता है, तब विधिवत् सन्ध्या नहीं करने से भी होता है। तब केवल गायत्री जप करने से हो जाता है। जब और अधिक उन्नति होती है, तब केवल ॐ जप करने से ही होता है।

– क्या यह स्वयं होता है?

महाराज – नहीं, स्वयं नहीं होता है। साधक स्वयं ही निश्चय कर लेता है।

– महाराज! गायत्री दर्शन क्या है? कैसे समझेंगे कि गायत्री दर्शन हुआ है?

महाराज – गायत्री मंत्र का जो तात्पर्य है, जो तत्त्व है, उसका निहितार्थ या उपलब्धि ही गायत्री-दर्शन हुआ ।

– क्या संन्यास के बाद भी गायत्री मन्त्र का जप किया जाता है?

महाराज – क्यों नहीं जप किया जा सकता है? गायत्री-दर्शन न होने तक गायत्री मन्त्र का जप किया जाता है। **(क्रमशः)**

पृष्ठ २६९ का शेष भाग

हँसी-मजाक है । एक-एक प्रमेय पर ही तीन लाख ग्रन्थ हैं । यदि तुम लोग इनके समक्ष 'ये कुछ नहीं जानते, कुछ भी नहीं जानते' – ऐसा कहो, तो इनके मन में पश्चात्ताप आयेगा और तब वे कुछ ज्ञान अर्जित करने की चेष्टा कर सकेंगे ।"

पूरी सभा स्तब्ध रह गयी । राजा बोले, "ठीक कहा महाराज, ठीक कहा !" मैंने सोचा था कि जिस मुसाहिब को मैंने डाँट दिया था, वह नाराज होगा । पर ऐसी बात नहीं थी, उसी ने अकेले में मुझसे कहा, "अच्छा किया, महाराज, आप लोगों को छोड़ दूसरा कौन बोल सकता है? हम लोगों की भला क्या हिम्मत ! हम तो थोड़े-से अन्न के दास हैं, इसीलिये ऐसी बातें कहते हैं ।"

इस प्रकार की चर्चा के दो माह बाद स्वामीजी को लिखे हुए मेरे पत्र का उत्तर आया । उसमें से कुछ अंश यहाँ उद्धृत करता हूँ –

"राजपुताने के भिन्न-भिन्न भागों में रहनेवाले ठाकुरों के बीच आध्यात्मिकता और परोपकार के भाव जाग्रत करने का प्रयत्न करो । हमें काम करना होगा ।

"खेतड़ी नगर के गरीब और नीच जातियों में द्वार-द्वार जाओ और उन्हें धर्म का उपदेश दो । उन्हें भूगोल तथा इसी तरह के अन्य विषयों की मौखिक शिक्षा दो ।

"बीच-बीच में दूसरे गाँवों में भी जाकर धर्मोपदेश करो और जीवन-यापन की शिक्षा दो । कर्म, उपासना और ज्ञान – पहले कर्म, उससे तुम्हारा मन शुद्ध हो जायेगा, नहीं तो सब चीजें निष्फल होंगी, जैसेकि यज्ञ की अग्नि के स्थान पर राख के ढेर में घी ढालने से वह निष्फल होती है ।

"गेरुआ वस्त्र भोग के लिए नहीं है; यह वीर-कर्म का ध्वज है । अपने शरीर, मन तथा वाणी को 'जगद्धिताय' अर्पित करो । तुमने पढ़ा है – मातृदेवो भव, पितृदेवो भव – 'अपनी माता को ईश्वर समझो, अपने पिता को ईश्वर समझो' – परन्तु मैं कहता हूँ – दरिद्रदेवो भव, मूर्खदेवो भव – 'गरीब, निरक्षर, मूर्ख और दुखी – इन्हें अपना ईश्वर मानो । इनकी सेवा करना ही परम धर्म समझो ।" **(क्रमशः)**

मन को अन्तर्मुखी करो

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

भगवान को पाना चाहते हो, तो अपने मन को अन्तर्मुखी करना सीखो। बहिर्मुखता से बचो। जितना आवश्यक है, उतना ही संसार-व्यवहार करो। परिवार के प्रति कर्तव्यों का पालन करो, किन्तु अपना पूरा मन ईश्वर में लगाओ। सांसारिक चर्चा, विषय-चर्चा बिलकुल मत करो। कभी भी, किसी की निन्दा मत करो। परनिंदा से बढ़कर कोई पाप नहीं है।

अपने २४ घंटे की एक अच्छी दिनचर्या बना लो। जीवन में अच्छी पुस्तकें पढ़ो, जिसे हम सत्साहित्य कहते हैं। जिन पुस्तकों के अध्ययन से हमारा मन शुद्ध हो, ऊँचे स्तर पर रहे, उनका अध्ययन करो। जिन साहित्यों के अध्ययन से हमारा मन भगवान में लगे, भगवान का चिन्तन हो, भगवान का स्मरण हो, उनका अध्ययन करो। सुविधा, सुयोग मिलने पर सन्तों का, भक्तों का सत्संग करो। सत्संग आध्यात्मिक जीवन के लिये बहुत महत्त्वपूर्ण है। सत्संग से आध्यात्मिक जीवन विकसित होता है, आध्यात्मिक जीवन सुरक्षित होता है और वह सहजता से ईश्वर से सम्बन्ध स्थापित करता है। इसलिये कभी सत्संग की उपेक्षा या अवहेलना मत करो।

उसके बाद भगवान के नाम का जप करो। घर में कितने वृद्ध लोग या सेवानिवृत्त लोग हैं, जो बेकार में बैठे रहते हैं और पुत्र-बहु पर खीझते रहते हैं। पड़ोसन के मिलने पर परनिन्दा करते हैं, कुछ लोग केवल अखबार ही दिन भर में चार बार पढ़ते रहते हैं। अरे भाई ! उससे अच्छा है, भगवान का नाम लो। परिवार, समाज में दोष ढूँढ़कर निकालने से अच्छा है, ईश्वर के पावन नाम का जप करो। उनकी लीलाओं को पढ़ो। सबसे बड़ी बात तुमसे जितना हो सके, दूसरों की सेवा करो।

हमको जीवन में जो गुरुमंत्र मिला है, उसका सतत जप करते रहना चाहिए। काम करते-करते भी जप करने की आदत डालनी चाहिए। जो हमने शुभ-अशुभ कर्म किये हैं, जप करने से वे अशुभ कर्म कट जाते हैं। ये लगातार करते रहना है, इससे हमारी साधना हो जायेगी। हमें अपनी वृत्ति बदलनी चाहिए। सबेरे उठकर जो भी काम कर रहे हैं, वे सब भगवान के लिये ही हम कर रहे हैं, ऐसा भाव रखना चाहिए। सूर्योदय के बाद उठेंगे, तो पाप लगता है, हमेशा सूर्योदय के पहले उठना है। सूर्योदय के पहले उठने से आरोग्य, शान्ति, ज्ञान प्राप्त होता है।

सन्ध्या का अर्थ है कि सुबह, दोपहर और शाम को भगवान का नाम जप करना है। सुबह जप करेंगे, तो रात के अशुभ कर्म कट जाते हैं और दोपहर में जप करने से सबेरे के अशुभ कर्म कटते हैं और शाम को जप करने से दोपहर के अशुभ कर्म कट जाते हैं। रात में सोते समय भी भगवान के पास प्रार्थना करनी चाहिए कि दिन भर हमने जो शुभ-अशुभ कर्म किये हैं, वे सब आपके चरणों में अर्पण कर रहे हैं।

जीवन का बहुत बड़ा सत्य मृत्यु है, उसको कोई याद नहीं करता, जबकि पता नहीं कब मृत्यु आ जाये। जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं को देखकर सोचना-समझना चाहिए, उन घटनाओं से शिक्षा लेनी चाहिये। यह भी विचार करना चाहिए कि एक-न-एक दिन काल आयेगा और हमें ले जायेगा। मृत्यु निश्चित है। इसका हमेशा स्मरण रखना चाहिए और बिलकुल डरना नहीं चाहिए, बल्कि मन से सबको सावधान रहना चाहिए। इसलिये जगने पर काम के बीच-बीच में भी भगवान का नाम तो लेते ही रहें। सुबह-शाम, जब समय मिले, तब जप करो। लेकिन जब सोने के लिये जाओ, तब सोने के पहले भगवान के नाम का जप करो। उनसे प्रार्थना करो। पता नहीं, तुम्हें अगली सुबह मिले या नहीं मिले।

भगवान को अपनी समस्याएँ भी बताओ और भगवान के स्मरण में बाधा न हो, उनसे प्रार्थना करो। सच्चे मन से की गई प्रार्थना भगवान तक पहुँच जाती है। भगवान निश्छल, सरल प्रार्थना सुनते हैं और भक्तों की रक्षा करते हैं। इसलिये भगवान से प्रार्थना करते रहो।

सुबह-शाम भगवान का भजन गाया करो। आधुनिक युग में बाधायें बहुत हैं, तो उनसे बचने का प्रयास करना चाहिए। ऐसे विकर्षण हमारे मन को भगवान से हटाते हैं, ये सब आध्यात्मिक जीवन की बाधायें हैं। OOO

कर्म करने की कला

कृष्णचन्द्र टवाणी

प्रधान सम्पादक, 'अध्यात्म अमृत', राजस्थान

प्रभु के चरणों में बैठकर जिस तरह हम तल्लीन होकर पूजा करते हैं, उसी तरह अपने कार्य को भी तल्लीन होकर पूर्ण ईमानदारी से करें, तो वह किसी पूजा से कम नहीं होता। जिस तरह बेमन से पूजा करने से कोई फल नहीं प्राप्त होता है, उसी प्रकार बेमन से कोई कार्य करने से सफलता प्राप्त नहीं हो सकती है। सत्कार्य करना, कार्य को पूर्ण मनोयोग से करना, कार्य के प्रति पूर्ण समर्पित होना ही श्रेष्ठ पूजा है। सदा नैतिकता से अपना जीविकोपार्जन करना और उसमें सफल होना और उसका सदुपयोग करना, मानव का प्रथम कर्तव्य है। अपने सत्कार्य को ईश्वर से जोड़ देना, ईश्वर की पूजा के समान है। किसी भी कार्य को सुनियोजित करना चाहिए। विभिन्न प्रकार के लोग कई प्रकार से कार्य करते हैं। कुछ लोग ऐसे मिलेंगे, जो कार्य और उसमें आनेवाली बाधाओं को बिना समझे-बूझे शुरू कर देंगे और परिणाम में उसमें असफलता होती है। ऐसे भी लोग हैं जो एक साथ बहुत-से कामों को अपने सिर पर ले लेते हैं, उसके फलस्वरूप कोई भी काम संतोषजनक ढंग से नहीं कर पाते। कुछ लोग माथे का पसीना तक नहीं पोंछते और काम में लगे रहते हैं। अनके ऐसे भी लोग हैं, जो सरल कामों को पहले चुन लेते हैं और पेचीदा कामों को अगले दिन के लिये छोड़ देते हैं।

कार्य करने की भिन्न-भिन्न विधियाँ

काम करने की विधियाँ भी अलग-अलग होती हैं। औजार एक ही तरह के होते हैं, लेकिन एक अकुशल बढ़ई एक रद्दी-सी बैंच ही तैयार कर पायेगा और अर्द्ध-कुशल एक अच्छी कुर्सी। लेकिन एक कुशल बढ़ई सुन्दर और चमकती हुई कैबिनेट तैयार कर डालता है, जो ग्राहकों का मन मोह लेती है। अब जरा सोचिये, कुशल मजदूर और अकुशल मजदूर में क्या अन्तर है? स्पष्ट है कि काम करने की उत्तम कला कुशल मजदूर में निखर उठती है, जबकि अकुशल मजदूर अधिकतर जोड़-तोड़कर काम कर पाता है। हर काम करना एक कला है। नेतृत्व में एक कला है। वक्तृत्व में एक कला है। यहाँ तक विवाह और वृद्ध होने में भी एक कला है। तब फिर काम तो हमारे जीवन का स्थायी अंग है। उसमें कला का निखार क्यों न हो?

काम करने का हमेशा कोई-न-कोई सबसे अच्छा रास्ता होता है, जिसके द्वारा काम समय पर और पूरी उत्तमता के साथ किया जाता है। किसी विशेष काम को करने का कोई विशेष तरीका हो सकता है, लेकिन उस विशेष काम को करने के लिये कुछ ऐसे सामान्य तरीके भी होते हैं, जो उस काम में चार-चाँद लगा देते हैं। अगर कोई व्यक्ति उस विशेष काम को करने लिए विशेष ढंग को जानता भी है, लेकिन उस काम को अव्यवस्थित, बिना योजना और मनमाने ढंग से करता है, तो समझ लीजिए कि उस कार्य को जानते हुए भी जब कार्य का परिणाम आयेगा तो वह सर्वोत्तम नहीं होगा। कार्य करने की कला के तत्त्व को समझे बिना ही कार्य आरम्भ करके हम शुरू में ही असफलता के बीज बो देते हैं।

लक्ष्य निश्चित करें

सर्वप्रथम हमें अपने लक्ष्य को निश्चित करना चाहिए। लक्ष्य ज्ञात होने से ही वह निश्चित होगा। बिना लक्ष्य के काम आगे नहीं बढ़ता। जब लक्ष्य सामने होता है, तो हमारी सारी शक्तियाँ उस लक्ष्य को प्राप्त करने में लग जाती हैं। काम अनेक तरह के होते हैं और उनकी समस्याएँ अनेक होती हैं। इसलिए लक्ष्य का चुनाव करते समय हमें अल्पकालिक और दीर्घकालिक लक्ष्य अलग-अलग तय करने होंगे और इनको पूरा करने के लिये जो प्रयास हम करेंगे, उनकी पद्धति यह होगी कि पहले अल्पकालिक लक्ष्य पूरा करें, इसके बाद दीर्घकालिक। एक बार लक्ष्य तय हो जाने के बाद हमारे लिये काम का ब्यौरा तैयार करना आसान हो जाता है, जो हमें हमारे लक्ष्य की ओर ले जायेगा । हमारा मन एक आश्चर्यजनक वर्कशॉप है। निरन्तर यह लगातार बिना रुके हुए काम करता रहता है। इसके दो विभाग होते हैं – चेतन और अवचेतन। चेतन मन आँख, कान, हाथ, आदि इन्द्रियों से सुझाव या बिम्ब ग्रहण करता है, लेकिन कुछ ऐसी बातें या बिम्ब होते हैं, जिनमें स्थायित्व का अंश अधिक होता है और जिनका प्रयोग भविष्य में भी होने की संभावना होती है। उन्हें अवचेतन मन में भेज दिया जाता है। मन की कार्यशाला बहुत ही सक्रिय कार्यशाला है और हमारी कल्पनाशक्ति का यह विशेष स्थान है। अवचेतन मन

लगातार नये बिम्बों और सुझावों का विश्लेषण करता रहता है और जो पहले से इकट्ठे हो गये हैं, उनकी सहायता से समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है। एक बार अवचेतन मन में समस्या ने प्रवेश कर लिया, फिर लगातार २४ घंटे उसी का विश्लेषण करती रहेगी और हमें सही रास्ते पर चलने का निर्देश देगी। जिसे हम मौका या चांस कहते हैं वह और कुछ नहीं बल्कि अवचेतन मन का ही आश्चर्जनक कार्य है।

हम हमेशा से सुनते आये हैं कि सफलता की कुंजी यही है कि एक समय में एक काम करें। लेकिन इस रास्ते पर चलना कठिन है। जब हमारे पास एक समय में एक काम करने को होता है, तो हमारी सभी शक्तियाँ उसमें लग जाती हैं। हमारे प्रयास ठीक उसी तरह लग जाते हैं जिस तरह कि लेंस के माध्यम से सूर्य की किरणें काम करती हैं।

टालमटोल न करें

कई बार हम सोचते हैं कि किसी काम को अगले दिन पर टाल देने से हम उस काम से बच सकते हैं, लेकिन ऐसा नहीं है। अवचेतन मन अधूरे काम के लिये छटपटाता रहेगा और हमारा मन कभी भी शांत नहीं रह पायेगा। अगर इस तरह के बहुत-से कामों की भीड़ इकट्ठी हो जाती है, तो आपकी नींद भी हराम हो जायेगी। अधूरे कामों का दबाव आपके चेहरे की चमक भी समाप्त कर देगा। तनाव आपके व्यक्तित्व का स्थायी तत्त्व बन जायगा। अपने काम को पूरा करने का सबसे बढ़िया तरीका यही है कि हमारे पास जो सबसे मुश्किल काम है, उसे पहले करें। एक बार वह काम पूरा हुआ नहीं कि मन हल्का हो जायेगा और उस काम के कारण जो तनाव हमारे मन पर होगा वह भी समाप्त हो जायेगा। अब आसान मूड के साथ हम अन्य बहुत-से काम उत्साहपूर्वक और थोड़े समय में निपटा लेंगे।

टालमटोल की आदत कुछ समय के लिये चाहे हमें खुश कर दे, लेकिन अंत में इस आदत के कारण पछताना ही पड़ता है। लगातार चीजों को टालते रहने से बहुत-से अधूरे काम इकट्ठे हो जाते हैं। यह स्थिति इसलिए पैदा होती हैं, क्योंकि निर्णय करने की हमारी शक्ति कमजोर है। अगर तथ्य सामने हैं, तो हमें तुरन्त फैसला कर लेना चाहिए और अगर तथ्य सामने नहीं हैं, तो सबसे पहले हमें उन तथ्यों को इकट्ठा करना चाहिए और तब हमें फैसला करना चाहिए।

समय को नियन्त्रित करें

एक काम में एकाग्र होने के साथ ही साथ समय को नियन्त्रण करने की भी जरूरत है। अगर हम बारीकी से देखें कि हमने एक-एक मिनट का उपयोग किस तरह किया है, तो हम इस नतीजे पर पहुँचे बिना नहीं रहेंगे कि हमारे समय का एक चौथाई फिजूल के कामों में चला गया और वही समय अगर बच जाता, तो हम शांतिपूर्वक अधिक काम कर सकते थे। इसलिए काम की योजना बनाना और उसके बाद उस योजना के अनुसार पूरी तरह वफादारी से काम करना समय को बचाने का सबसे सुनिश्चित रास्ता है।

हम जो भी कार्य करें उसमें उत्साह और प्रमोद का तत्व रहना चाहिए। यह तभी होगा जब आप अपने काम को पसन्द करेंगे। अगर हम किसी काम को पसन्द नहीं करते, तो उसके प्रति हमारा प्रेम भी नहीं होगा। जब आप काम को प्यार करते हैं या उस व्यक्ति के लिये काम करते हैं जिसे आप प्यार करते हैं, तो उस काम में आपको थकावट नहीं आयेगी। ऐसी स्थिति में आपके मन का प्यार कार्य के माध्यम से सजीव हो उठता है और फिर जो उपलब्धि सामने आती है, उसका सौन्दर्य और गुण बेजोड़ होगा। काम के प्रति यह प्यार तभी उपजेगा जब कार्य हमारी पसन्द का होगा। ऐसे काम को करना जो हमारी पसन्द का नहीं है, समय और शक्ति की ऐसी बर्बादी है, जिसे टाला जा सकता है। इससे बोरियत भी पैदा होती है। हमें कार्य में अपनी आत्मा डालनी पड़ती है और उसके प्रति समर्पित होना पड़ता है। सारांश यही है कि अपना कार्य समय पर, सही ढंग से पूरा करना ही पूजा के समान है। ○○○

पृष्ठ २७९ का शेष भाग

समस्त उपनिषदों का सार मुण्डकोपनिषद् (२.२.५) व श्वेताश्वतरोपनिषद् (३.८, ६.१५) के मंत्रों में समाहित है, जिनमें क्रमश: कहा गया है – ''तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथामृतस्यैष सेतु:।'' (मु.उ. २.२.५) अर्थात् उस एक परमात्मा को ही जानो और समस्त बातों को छोड़ दो, यही अमृत (मोक्षप्राप्ति) का सेतु (साधन) है तथा 'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्य: पन्था विद्यतेऽयनाय'।। श्वेता.उ. (३.८, ६.१५) अर्थात् उस परमात्मा को जानकर ही पुरुष मृत्यु को पार करता है, इसके सिवाय परमपद प्राप्ति का कोई अन्य मार्ग नहीं है। ○○○

नमामि देवि नर्मदे

पं. कामता प्रसाद द्विवेदी, अमरकंटक

आदिकालीन पौराणिक, धार्मिक, दिव्य तपोभूमि अमरकंटक-पर्वत माँ नर्मदा की उद्‌गम स्थली होने के साथ-साथ अनादि काल से धार्मिक श्रद्धालुओं की श्रद्धा, आस्था का विश्वस्तरीय धार्मिक, सांस्कृतिक केन्द्र रहा है। पुण्य सलिला माँ नर्मदा सम्पूर्ण विश्व में परिक्रमा के कारण विख्यात हैं। पवित्र नर्मदा का महत्त्व पुराणों एवं वैदिक साहित्यों में इस प्रकार वर्णित है –

नर्मदा तु नदी श्रेष्ठा सर्वपाप प्रणाशिनी।
तारयेत् सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च।।
गंगा तु कनखले पुण्या, कुरुक्षेत्रे सरस्वती।
ग्रामे वा यदि वारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा।।
त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्ताहेन तु यामुनम्।
स्नातु वारि गांगेयं दर्शनाद् देवि नर्मदा।।

इसी प्रकार 'रेवा तीरे तपः कुर्यात्' का उल्लेख भी मिलता है। पुराणों में वर्णित पवित्र नर्मदा के अक्षय जलाधार से सम्पूर्ण मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र एवं गुजरात अभिसिंचित है। 'मेरी नर्मदा मैया' जनमानस में अमृत रूप में प्रवाहित होकर साक्षात् शांकरी गंगा के रूप में प्रतिष्ठित हैं। सांसारिक दुख, पीड़ा, व्यथा, अशान्ति और क्लेश से मुक्ति पाने के लिए जब मानव पवित्र नर्मदा के तट पर आता है और माता नर्मदा की पावन गोद में बैठता है, तब उसे एक माँ की गोद जैसी हर्ष, आनन्द सुखानुभूति प्राप्त होती है। उसका मन स्वयमेव पुकार उठता है –

नर्मदा मैया तू महारानी छे।
थारो मीठो मीठो पानी छे।।

विश्वविख्यात अमरकंटक माँ नर्मदा की उद्‌गम स्थली होने के साथ ही सिद्ध योगियों, मुनियों महर्षियों – मार्कण्डेय, दुर्वासा, भृगु, कश्यप, सनत्कुमार, कपिलमुनि, नचिकेता, नारद आदि श्रेष्ठ सिद्धों की तपोभूमि रही है। महाकवि कालिदासजी ने अपनी अद्वितीय रचना 'मेघदूतम्' में अमरकंटक पर्वत के सुन्दर प्राकृतिक स्वरूप को 'आम्रकूट' के नाम से सम्बोधित किया है। अमरकंटक पर्वत और माँ नर्मदा की पौराणिक महत्ता को जानकर प्राचीन काल से ऋषि-मुनियों ने नर्मदा नदी की परिक्रमा करके एक आध्यात्मिक संस्कृति को विकसित किया है, जो अनादि काल से आज भी अनवरत जारी है। माँ नर्मदा का पावन तट उत्तर एवं दक्षिण आध्यात्मिक वैभव से परिपूर्ण रहा है। भूतभावन महेश्वर शिव के कंठ से उद्‌भूत 'स्वेदोद्‌भवा नर्मदा' को परमात्मा ने जगत में देव, महर्षि एवं मानव के कल्याणार्थ जल रूप (रेवा) में परिणत होकर बहते हुए देव-मानव के पाप-ताप-संताप को हरण करने के लिये पृथ्वी पर अवतरित किया। ऐसी अनन्त कोटि महिमामंडित पुण्य सलिला माँ नर्मदा सुन्दर, निर्मल और सुचितास्वरूप हैं।

सप्तकल्पस्मरा यस्मात्तस्मादधिकमागता।
अमरा चेति संभाव्य प्रोच्यते मोक्षचिन्तकै :।।
मुच्यते दर्शनात्तस्या मनुष्याः पाप संचयैः।
नर्मदाया नरश्रेष्ठ येऽचर्यन्ति त्रिलोचन।।
ते रूद्रलोकमासाद्य तिष्ठन्ति सुखसंस्थिता।
इयं रुद्रांगसम्भूता महापुण्या महानदी।।

युगों-युगों से कल्प-कल्पान्तवहा नर्मदा एवं धार्मिक नदियों के संरक्षण के लिये वेदों में इस प्रकार से वर्णन किया गया है –

यस्यामापी चूरा समानी रहोरात्रे अपेयादं चरन्ति।
सानो भूमि धरा पयोः दुहा मयोःउक्षन्तु वर्चसा।।

यह जल धरती के धैर्य एवं पृथ्वी के पुलक का कारण है। जल ही परम औषधि एवं परम भोजन है, पेयों का पेय है। अमरकोष में जल की महत्ता को इस प्रकार परिभाषित किया गया है – **पयः कीलालम् अमृतं जीवनं भुवनम्।** वेदों ने भी बड़े सुन्दर ढंग से जल की महिमा का गायन किया है – **आपो हिष्ठा मयो भुवस्ता न ऊर्जे दधात नः।** – हे आपः ! तुम निश्चय ही सुखकारक हो, तुम बल और प्राणशक्ति से हमें पुष्ट करो। जिस प्रकार मातायें अपने पुत्रों को दूध पिलाकर पुष्ट करती हैं, उसी प्रकार हे आपः! तुम्हारा जो अत्यन्त कल्याणकारी अमृतमय रस है, उसका हमें भागी बनाओ। हे आप! हम उसी जीवन रूपी रस को प्राप्त करने के लिये तुम्हारे पास आते हैं, जिसके धारणार्थ ही तुम्हारी सत्ता है।

नदियों के बाढ़ के कारण वर्षाकाल में श्रीरामजी को प्रस्त्रवण पर्वत पर समय व्यतीत करना पड़ा। वे विवश थे। इस मौसम में आगे यात्रा करना सम्भव न था। उन्हें वन की जानकारी के लिये जितना सहयोग सुग्रीव से अपेक्षित था, उतना ही नदियों की प्रसन्नता की भी। उन्होंने शरद ऋतु की

प्रतीक्षा की। नदियों की प्रसन्नता के बिना काम कैसे बनेगा? जो राम उदधि को बंदी बना सकते हैं, वे ही राम नदी का प्रसाद चाहते हैं। दूरदर्शी राम यह समझते हैं कि नदियों का आक्रोश, उनका भयंकर ताण्डव मानव इतिहास के लिये बड़ा खतरा है। इसलिये उनको छेड़ो मत, उनमें अवरोध मत पैदा करो। इनका सौहार्द, प्रसाद फलदायक और स्थायी होता है। प्रकृति के परिष्कार के लिए इन्हें अविरत, अविराम बहने दो। यदि नदियाँ ही सूख गईं, उदक-विहीन हो गईं, प्रदूषित हो गईं, तो क्या होगा राष्ट्र का? क्या होगा प्राणियों का? कैसे जीवधारी प्राण-धारण करेंगे? मानव की सबसे बड़ी आवश्यकता जल की होती है। उसमें भी पेय जल की। कहा गया है – **सर्वेषु पेयेषु जलं प्रधानम्।** सभी जलों में पेय जल प्रधान है। नदियाँ निरापद अक्षय जल भंडार होने के कारण मानव संस्कृति की निर्मात्री बन गईं। जल की पवित्रता को ध्यान में रखते हुए इनमें किसी भी प्रकार की गंदगी (मानव निर्मित प्रदूषित, कार्बनिक एवं अकार्बनिक, खनिज एवं लवण) आदि को नहीं मिलने दिया जाना चाहिए।

निम्नलिखित शास्त्र-वचन जल की महत्ता और उसकी शुद्धता को इंगित करते हैं –

ताः आः शिवोऽयोऽप्यक्षमंकरणीयां (ऋग्वेद) – जल ही उपादेय है, जो निर्दोष, रोगकृमियों से रहित तथा आरोग्य प्रदान करनेवाला है।

आपो अस्मान् मातरः शुन्धन्तु – जल हमारी माता है। वे शुद्ध रहें।

जल में किसी भी प्रकार का अपशिष्ट पदार्थ न डाला जाय, ऐसा कहा गया – **नाप्सु मूत्रपुरीषं कुर्यात् न निष्ठीवेत् –** मल-मूत्र को किसी भी प्रकार से जल में नहीं मिलने दिया जाना चाहिए। यहाँ तक कि इसके समाधान के लिए कहा गया **– अराच्या बरुथान्न पुरीषं कुर्यात् –** मल मूत्रों का विसर्जन मार्गों व नगर से काफी दूर किया जाना चाहिए।

शुद्ध जल औषधि रूप है, जो मानव जीवन के लिये अत्यन्त पुष्टि एवं लाभकारी माना गया है, जो मधुस्त्रावी पवित्र तथा पवित्रतादायक हो।

पवित्र नर्मदा नदी के जल-स्त्रोत एवं अमरकंटक के प्राकृतिक वन संपदाओं के संरक्षण हेतु निम्नलिखित बातें ध्यातव्य हैं -

१. पवित्र नर्मदा उद्गम अमरकंटक से रेवा सागर संगम भड़ौच, गुजरात तक नर्मदा नदी के दोनों तटों पर १५ कि.मी. तक बड़े-बड़े उद्योगों की स्थापना पर प्रतिबन्ध हो।

२. पवित्र नर्मदा के १५ कि.मी. दोनों तटों पर वनों की कटाई पूर्ण प्रतिबन्धित हो एवं दोनों तटों पर आम, पीपल, बरगद, गुलर, पाकर, उमर, हर्रा, बहेरा, आंवला, जामुन के वृक्षों का सघन रोपण कराया जाए।

३. नर्मदा नदी के दोनों तटों पर ३५ कि.मी. परिधि में खदानों का उत्खनन, पर्वतों का विदोहन, विदीर्णीकरण पर प्रतिबन्ध हो। इससे नर्मदा नदी से मिलनेवाली सहायक नदियों के जल स्त्रोतों को भी संरक्षण प्राप्त होगा और नर्मदा नदी दीर्घ काल तक सुरक्षित रहेगी।

४. पावन नर्मदा के दोनों तटों पर ५०० मी. क्षेत्र में सभी प्रकार के भवन, स्कूल, आश्रम, धर्मशाला, गोशालाओं आदि के निर्माण एवं निर्माण की अनुमति पर प्रतिबन्ध हो।

५. मेकल पर्वत अमरकंटक में पाई जानेवाली दुर्लभ जड़ी-बूटियों को संरक्षण प्राप्त हो।

पवित्र नगरी अमरकंटक में प्रतिवर्ष देश-विदेशों से हजारों-लाखों की संख्या में पुण्य सलिला माँ नर्मदा नदी में स्नान एवं दर्शन के लिये श्रद्धालु आते हैं, इसलिये सम्पूर्ण विश्व जनमानस की धार्मिक श्रद्धा एवं आस्था को ध्यान में रखते हुए पवित्र नर्मदा नदी के जल-स्त्रोत के संरक्षण तथा पवित्रता के लिये इससे सम्बन्धित विशेषज्ञों द्वारा योजनायें बनाने और उसके अनुसार कार्यान्वयन करने का आदेश जारी किया जाए, जिससे पवित्र माँ नर्मदा नदी का जल प्रदूषणमुक्त हो सके। ○○○

सार्वभौमिक प्रार्थना

शैवानामीश्वरो विष्णुर्वैष्णवानां च सम्मतः।
देवीति शाक्त तन्त्रे च बुद्धौ बौद्धसुपूजितः।।
अर्हन्तो जैन धर्मस्य क्रैस्तानां क्रिस्त एव च।
जिहोवश्च यहूद्यानामल्ला माहमदस्य च।।
परैराहूरमास्देति फारसीकैश्च कथ्यते।
एवं यज्ज्योतिराभाति तज्ज्योतिश्शं करोतु नः।।

– जिसे शैव शिव, वैष्णव विष्णु और तन्त्र में शाक्त देवी कहते हैं, बौद्ध जिसे बुद्ध, जैन अर्हत्, ईसाई ईसा, यहूदी जिहोवा, मुसलमान अल्लाह और पारसी अहूरा मजदा कहते हैं, वह दिव्य ज्योति हमें शान्ति, आनन्द प्रदान करे।

– स्वामी हर्षानन्द

समाचार और सूचनाएँ

छत्तीसगढ़ में रामकृष्ण मिशन का नया केन्द्र प्रारम्भ हुआ

२२ फरवरी, २०१९ को १०.१५ बजे छत्तीसगढ़ के बिलासपुर में रामकृष्ण मिशन के नये केन्द्र का शुभारम्भ हुआ। रामकृष्ण सेवा समिति, बिलासपुर के सचिव श्री सतीश द्विवेदी जी ने रामकृष्ण सेवा समिति, कोनी की सम्पूर्ण चल-अचल सम्पत्ति सम्बन्धी प्रपत्र को रामकृष्ण मिशन के सह-महासचिव स्वामी बोधसारानन्द जी को समर्पित किया।

इस समर्पण समारोह में मुख्य अतिथि रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज थे और विशिष्ट अतिथि थे छत्तीसगढ़ सरकार के महाधिवक्ता श्री कनक तिवारी जी। इसके अतिरिक्त विभिन्न केन्द्रों से आमन्त्रित मंचस्थ अतिथि थे – स्वामी सत्यदेवानन्द, स्वामी राघवेन्द्रानन्द, स्वामी नित्यज्ञानानन्द, स्वामी निर्विकारानन्द और डॉ. ओमप्रकाश वर्मा जी।

रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ द्वारा बिलासपुर आश्रम के नव नियुक्त सचिव स्वामी सेवाव्रतानन्द जी ने सभी आगत महात्माओं, भक्तों का स्वागत किया। उपरोक्त सभी मंचस्थ अतिथियों ने जन-समूह के समक्ष अपने विचार-सुमन प्रस्तुत किए। साधु भण्डारा हुआ। समागत सभी भक्तों ने भोजन ग्रहण किया। ५० वर्षों से विभिन्न आरोह-अवरोह से गुजरते हुए रामकृष्ण सेवा समिति, बिलासपुर कोनी का यह पावन स्थल अन्त में रामकृष्ण मिशन रूपी महासिन्धु से संयुक्त हो गया। समारोह में लगभग ४० साधु और ३०० लोग उपस्थित थे। आश्रम से सम्पर्क करने का पूरा पता है –

रामकृष्ण मिशन, कोनी रोड, नये बस स्टेन्ड के सामने, सरकण्डा, बिलासपुर – ४९५ ००९ (छत्तीसगढ़), फोन नम्बर – ८२४०१ २९७२८ और ९४३३५ ३००४६, ई-मेल – bilaspur@rkmm.org

राजकोट में स्मारिका का विमोचन हुआ

स्वामी विवेकानन्द के गुजरात भ्रमण की १२५वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में रामकृष्ण आश्रम, राजकोट, गुजरात द्वारा २४ फरवरी, २०१९ को 'स्वामी विवेकानन्द और गुजरात' पर आधारित एक स्मारिका का प्रकाशन किया गया, जिसका विमोचन गुजरात के शिक्षामन्त्री श्री भूपेन्द्र सिंह चुड़ासमा ने किया। इस समारोह में लगभग ५०० छात्र, शिक्षक, अभिभावक और गणमान्य लोग उपस्थित थे। इस अवसर पर स्वामी विवेकानन्द पर राज्यस्तरीय लिखित प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता में ६ राज्यस्तरीय और ९६ जिलास्तरीय सर्वश्रेष्ठ विजेताओं को पुरस्कार प्रदान किया गया। प्रतियोगिता रामकृष्ण आश्रम, राजकोट द्वारा आयोजित थी। इस प्रतियोगिता में गुजरात राज्य के ९९४ विद्यालयों के ९वीं कक्षा से लेकर १२वीं कक्षा तक के ७९,१३१ छात्रों ने भाग लिया।

कुम्भ मेला शिविर का आयोजन

कुम्भ मेला के सुअवसर पर **रामकृष्ण मठ, प्रयागराज** ने १२ जनवरी, २०१९ से २० फरवरी, २०१९ तक एक कुम्भ मेला शिविर का आयोजन किया। इस शिविर में लगभग २०० साधुओं और १५०० भक्तों को भोजन-आवास की सुविधाएँ प्रदान की गईं। मंदिर-सत्संग पांडाल में प्रतिदिन भक्तिसंगीत और व्याख्यान होते थे। दूसरे पांडाल में श्रीरामकृष्ण देव, श्रीमाँ सारदा और स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन पर आधारित प्रदर्शनियाँ लगाई गई थीं। एक पांडाल में नि:शुल्क चिकित्सा-शिविर लगा गया था, जिसमें कुल ३२,००० रोगियों की चिकित्सा की गई। इस अवसर पर एक स्मारिका भी प्रकाशित की गई। OOO

सूचना

स्वामी व्रजमोहनानन्द, जिनके पूर्वाश्रम का नाम प्रशान्त है, उन्होंने रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ द्वारा संचालित रामकृष्ण संघ को छोड़ दिया है । वे रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन की ओर से हमारे भक्तों या आम जनता से दान-संग्रह करने या किसी भी प्रकार की सहायता के लिए अधिकृत नहीं हैं ।

महासचिव,
रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन